मानव हो महावीर

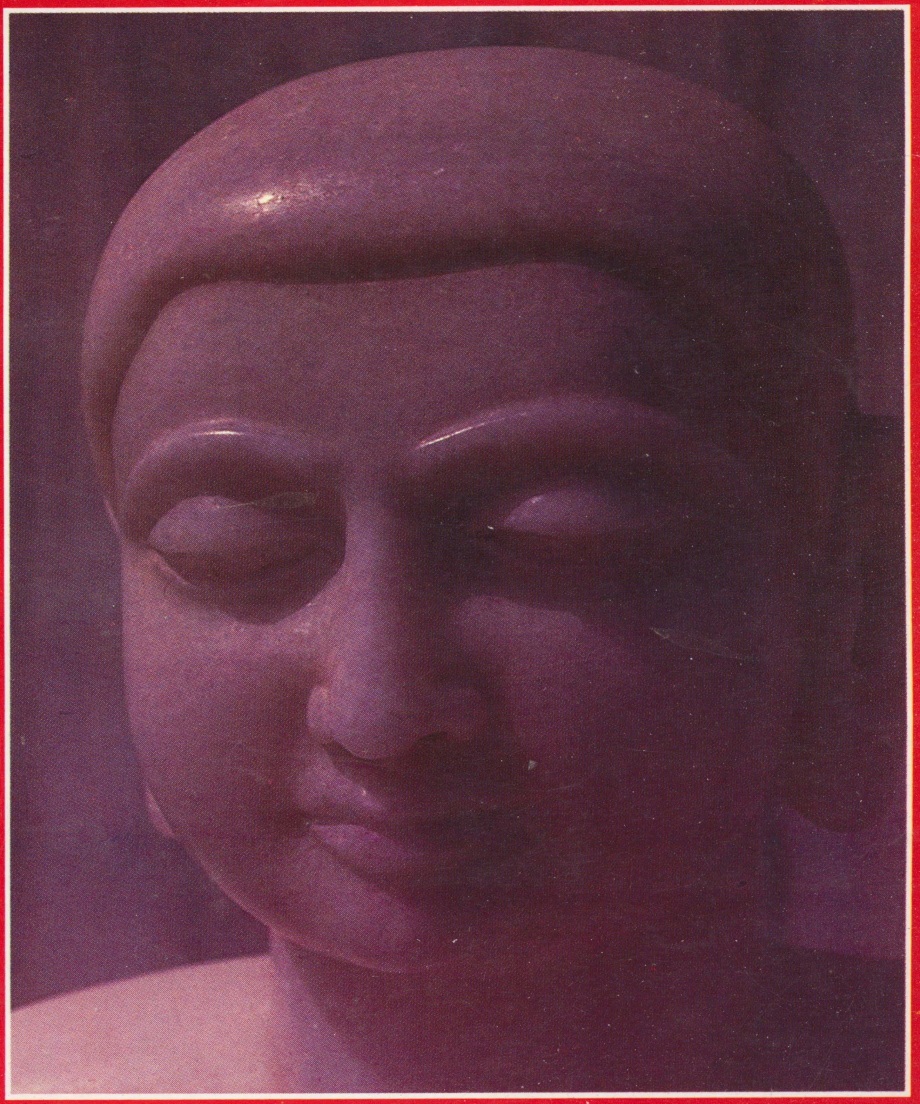

श्री चन्द्रप्रभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री चन्द्रप्रभ

मानव हो महावीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मानव हो महावीर

श्री चन्द्रप्रभ

प्रेरणा :
गणीवर श्री महिमाप्रभ सागर जी

संपादन :
सुश्री विजयलक्ष्मी जैन

सौजन्य :
श्री प्रकाश, अशोक, सिद्धिराज
दफ्तरी, बीकानेर/कलकत्ता

प्रकाशन :
श्री जितयशा फाउन्डेशन,
९-सी एस्प्लानेड रो, ईस्ट, कलकत्ता

प्रकाशन वर्ष :
१९९५

कम्पोजिंग :
राधिका ग्राफिक्स, इन्दौर

मूल्य :
१० रुपये

मुद्रक :
अनमोल प्रिंटर्स, जोधपुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नमन

मेरा ध्येय —
न धन खोजना है, न अभाव;
न धनवान होना है, न निर्धन;
न सुख खोजना है, न दुःख;
न सुखी होना है, न दुःखी;
न ज्ञान खोजना है, न अज्ञान;
न ज्ञानी होना है, न अज्ञानी;
न संसार खोजना है, न निर्वाण;
न रागी होना है, न विरक्त;
न कर्ता होना है, न निष्कर्म;
न जीवन खोजना है, न मृत्यु;
न जन्म लेना है, न मरना;
न आत्मा खोजना है, न शरीर;
न विषय होना है, न साक्षी;
न आत्मा होना है, न अनात्मा

मेरा ध्येय है —
बस शांत रहना, शांत होना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्म की सारी कोशिश, सारी तलाश
बस शांति की तलाश है।
पर उपाय क्या?
मन की निरन्तर चलती पागल बड़बड़ाहट से
मुक्त होकर शांत होने का उपाय क्या?
महावीर आज हमारे बीच नहीं,
बुद्ध भी चले गए, कृष्ण, जीसस,
नानक का भी सहारा नहीं,
तो कौन मार्ग-दर्शन करे कि
शांति का उपाय क्या?
निराशा के इस घनघोर कुहासे में
प्रकाश की एकमात्र किरण है,
जीवित सद्गुरु का सान्निध्य, उनकी लेखनी का,
वाणी का सहारा।
श्री चन्द्रप्रभ— एक शांत मन, मौन आत्मा;
जिसने न केवल अपने स्वरुप बल्कि स्वरुप से भिन्न,
पदार्थ के स्वभाव को भी पहचाना, और
इसीलिए जो अपने से भिन्न प्रत्येक,
चाहे वह अपना शरीर ही क्यों न हो; को
उसके स्वाभाविक स्वतंत्र परिणमन पर
छोड़कर पृथक खड़े होने में,
आत्मस्थ होने में सफल, सक्षम हुए।
हमारा अहोभाग्य कि उनका जीवंत सान्निध्य,
उनकी वाणी, उनकी संबोधि का आसरा
हमें उपलब्ध है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मानव हो महावीर के पुस्तकाकार में
जैसे जीवंत सद्गुरु ही अवतरित हुए है,
पथ-विस्मृत पथिकों का हाथ थामने को।
वे बांट रहे हैं एक समझ—
अपनी ही संभावनाओं को तलाशने की,
पहचानने की।
वे कर रहे हैं हमारा आह्वान—
स्वयं बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओ!
वे दे रहे हैं हमें आत्मविश्वास—
स्वयं महावीर हो जाओ!

अब शांत होना, शांत रहना असंभव नहीं,
जब कोई हमारे पथ पर, पग-पग पर
अपनी स्नेह-आपूरित प्रज्ञा के दीप संजोने को,
हमारे साथ-साथ चल रहा हो, जिसका
अभय-हस्त हमारे सिर पर हो।
उनकी संबोधि को, वाणी को, लेखनी को,
भूमिका देना न संभव है, न उपयुक्त;
यह तो है बस—
उनके श्री चरणों में
अभीप्सित हृदय का
अहोभाव-पूर्ण नमन .....

- *निःशेष*

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

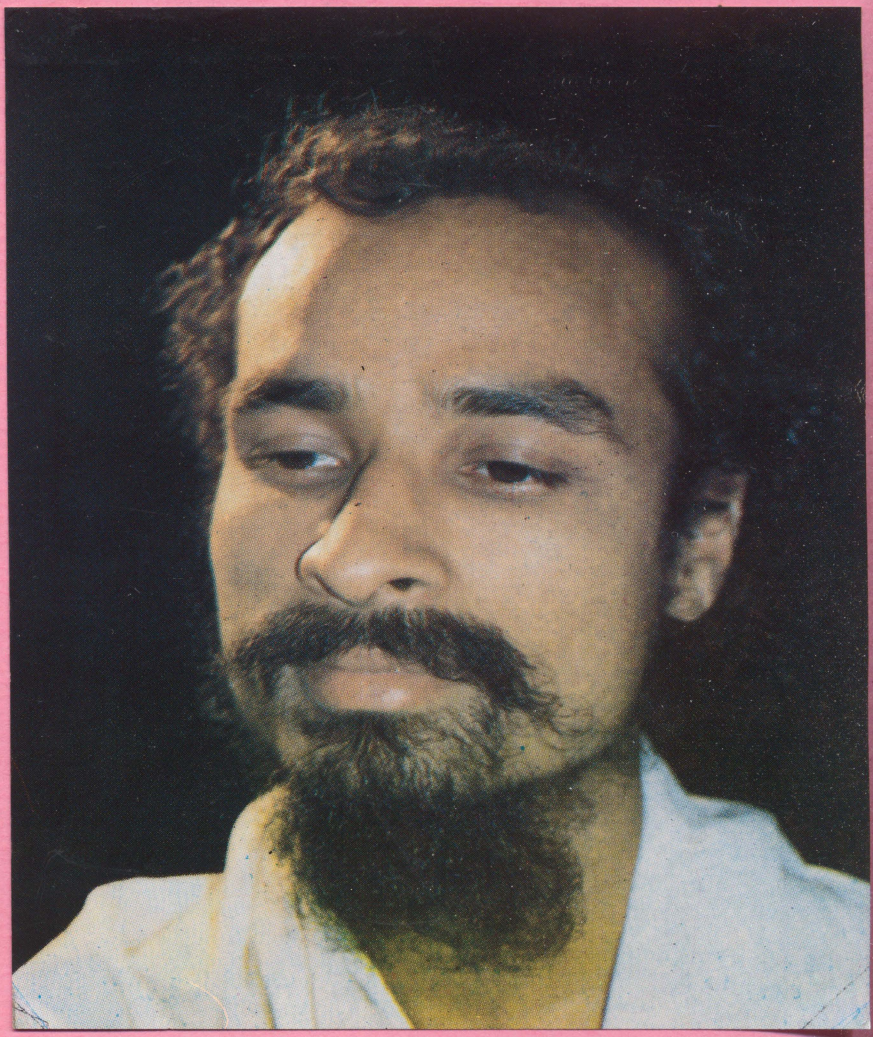

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मानव हो महावीर

धरती पर मानव-जाति के क़दम बहुत आगे बढ़ चुके हैं। धरती के इतिहास में जितने उतार-चढ़ाव आए हैं, उतने शायद और किसी ग्रह में नहीं आए होंगे। यहां तक कि धार्मिक आस्था वाले लोग जिसे स्वर्ग और नर्क कहते हैं, वहां भी इतने उतार-चढ़ाव नहीं आए होंगे। कालचक्र की परिक्रमा और समय की उठापटक से पृथ्वी खूब प्रभावित हुई है।

महावीर और बुद्ध हजारों वर्ष पीछे छूट गए हैं। पार्श्वनाथ, राम और ऋषभदेव उनसे ज्यादा पीछे छूट गए हैं। पार्श्वनाथ, ऋषभदेव के नए संस्करण थे और महावीर, पार्श्वनाथ के नए संस्करण थे। हम इनके युग से हजारों वर्ष आगे आ गए हैं। बहुत दूर आ चुके हैं। हमारे पांव पृथ्वी पर हैं और आंख चांद के पार।

अमृत-पुरुषों के बारे में यह कितनी महत्त्वपूर्ण बात है कि हम उन्हें हजारों वर्ष बाद भी याद करते हैं। उनकी साधना अनगिनत पुण्य-प्रदेशों का निर्माण कर गई है कि हजारों साल बाद भी उन्हें याद किया जा रहा है। परमात्म-पुरुषों का स्मरण होना शुभ चिह्न है। महावीर और बुद्ध को आज भी याद करना हमारे आध्यात्मिक जीवन के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिए एक शुभ लक्षण है।

आज भले ही हमारा मूल धर्म से संबंध कम हो चुका है, हमारा धर्म महज दिखावे का धर्म रह गया है, लेकिन परमात्म-पुरुषों की स्मृति की किरण जीवन के अंधकार को तिरोहित कर सकती है। अंधकार कितना भी सघन क्यों न हो, प्रकाश की एक किरण भी उसे हटाने की पहल कर सकती है। यदि हम किरण को आधार मान लें, तो निश्चित ही यह किरण, वह आधार-सूत्र बन सकती है, जो हमें सूरज तक ले जा सकती है। बूंद सागर तक ले जा सकती है, तिनका डूबते के लिए सहारा बन सकता है।

माना, शुरू में ही किसी को सूरज नहीं मिल जाता, प्रकाश का भंडार नहीं मिल जाता। जीवन के हर मूल्य की शुरुआत चिराग से होती है। महापुरुषों की याद हमारे लिए ऐसे ही चिराग की तरह है। हम एक किरण को ही अपना लें, तो उसके सहारे सूरज तक पहुंच सकते हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में अष्ट सिद्धियों की चर्चा आती है। अणिमा-महिमा, आठ सिद्धियों में पहली और दूसरी सिद्धि हैं। अणिमा यानी बड़ी से बड़ी चीज को छोटे में बदलने की क्षमता और महिमा यानी छोटी-से छोटी चीज को विराट बना डालने की क्षमता। परमात्मा की, महापुरुषों की स्मृति, उनके प्रति होने वाली श्रद्धा भले ही हमें अध्यात्म् के मार्ग का एक शुरुआती कण भर लगे, पर एक कंकरी भी तालाब को तरंगित कर सकती है, वर्तुलों से घेर सकती है। चिनगारी दावानल का रूप ले सकती है। सूरज न हो, तो दीया भी सूरज का पर्याय हो जाता है।

माटी का दीया सिर्फ माटी का ही नहीं है। वह प्रकाश की क्रांति का संवाहक है। माटी के दीये को हम तुच्छ नहीं कह सकते। दीया ही न होगा तो प्रकाश की पहचान कहां से करोगे। इसलिए दीये का अर्थ है, किरण का मूल्य है। राम की याद आती है, तो इसके कुछ मायने हैं।

याद बहुत कुछ कर सकती है, चाहे वह राम की हो, कृष्ण की हो, जरथुस्त्र या महावीर की हो। वह हमें पुलक से भर सकती है। खुमारी दे सकती है। अभीप्सा जगा सकती है। गुणानुरागिता को जन्म

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दे सकती है। संकल्पों और भावों को दिव्यता दे सकती है। सूर का ताल और मीरा का नृत्य दे सकती है। हम महावीर या बुद्ध की याद के सहारे उन महापुरुषों तक पहुंचें, उससे पहले कुछ बातों को समझें। इन बातों का संबंध महावीर और बुद्ध जैसी महान विभूतियों के साथ है, स्वयं हमारे साथ है। यदि हम स्वयं को छोड़ देंगे, केवल महापुरुषों की चर्चा करेंगे तो कोई अर्थ न होगा।

बदला न अपने आपको जो थे वही रहे।
मिलते रहे सभी से मगर अज़नबी रहे।।

आज तक हमने जितना भी सुना, विडम्बना रही है कि सिर्फ महापुरुषों के बारे में सुना, अपने बारे में कुछ न सुना। महापुरुषों के बारे में बहुत सोचा, अपने बारे में कुछ न सोचा। बुद्ध के बारे में जाना, औरों को जाना, पर खुद अनबूझी पहेली रह गए। औरों की मुक्ति को पढ़ा, पर स्वयं मकड़जाल में उलझे रह गए।

महावीर, राम, बुद्ध परमात्मा हैं, उनके बारे में सोचा जाना चाहिए, मनन किया जाना चाहिए। लेकिन परमात्मा का नम्बर भी दोयम है, पहला नम्बर हमारा स्वयं का है। जो व्यक्ति अपने बारे में नहीं सोच सकता, वह परमात्मा के बारे में क्या सोचेगा? जो अपने को न जान सका वह औरों को कैसे जान पाएगा? जिसके पास स्वयं का परिचय-पत्र नहीं है, वह परमात्मा को कैसे पहचानेगा? कंधे पर राम नाम की चदरिया हो सकती है, लेकिन परमात्मा से परिचय नहीं हो सकता। परमात्मा मंजिल है, वह कोई सोपान नहीं है। व्यक्ति जब अपने आप तक न पहुँचा, आत्मा तक न पहुंचा, तो परमात्मा तक कैसे पहुंचेगा? व्यक्ति जब अपने भीतर ही नहीं पैठा, तो भीतर बैठे स्वामी से संवाद कैसे कर पाएगा? भीतर का संगीत ही नहीं सुना तो परमात्मा का संगीत कैसे पहचान पाएगा?

व्यक्ति के भीतर अभी तो इतना कोलाहल है कि भीतर बैठे उस महान स्वामी का, अंतर्यामी का कोई स्वर, कोई संवाद, कोई माधुर्य हम तक नहीं पहुंच पाता। जब मनुष्य के भाव अहोभाव में रूपान्तरित ही नहीं हुए, जब स्वयं की मस्ती ही पैदा नहीं हुई, तब परमात्मा की मस्ती कहां से आएगी! इसलिए 'अपने' बारे में बातें करने के बाद ही कुछ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बातें राम-रहीम के बारे में, महावीर-कबीर के बारे में, मीरा-मलूक के बारे में, परमात्मा के बारे में, सम्बोधि-धर्म के बारे में करने की सार्थकता होगी।

पहली बात तो यह है कि यदि आप हिन्दु कुल में पैदा हुए हैं, मात्र इसलिए राम के प्रति श्रद्धा रखते हैं, तो आपकी श्रद्धा मौलिक फूल नहीं खिला पाएगी। आप जैन कुल में पैदा हुए हैं, इतने मात्र से महावीर के प्रति आस्था रखते हैं, तो वह आस्था अध्यात्म का शिखर नहीं बन सकती। यदि कोई बौद्ध वंश में पैदा हुआ है, मात्र इसलिए बुद्ध के प्रति विश्वास रखता है, तो ऐसा विश्वास बोधिसत्व की करुणा को जन्म नहीं दे सकता।

जैन कुल में पैदा हो गए सिर्फ इसलिए महावीर के प्रति श्रद्धा नहीं रखनी है। इसमें महावीर की कोई विशेषता नहीं है। यह विशेषता तो तुम्हारे कुल की हुई। जब महावीर के प्रति श्रद्धा सिर्फ महावीर होने के कारण होगी, तभी सार्थक होगी। तब ऐसा होगा कि तुमने वास्तव में महावीर की विशेषताओं को अंगीकार किया है। ऐसे लोग बहुत मिल जाएंगे, जो जैन कुल में पैदा नहीं हुए हैं परन्तु महावीर के प्रति श्रद्धा रखते हैं। महावीर के मंदिर के आगे से गुजरते हुए जैनों का सिर इतनी जल्दी नहीं झुकेगा, लेकिन जिसे आप अजैन कहते हो, उसका सिर जरूर झुकेगा। जैन कुल में पैदा होने वाले की महावीर के प्रति आस्था की बजाय उसकी आस्था अधिक बलवान होगी जो जन्मजात जैन नहीं है। ऐसे आदमी की आत्मा अधिक जीवंत कहलाएगी।

बीते युगों में जो भी महापुरुष हुए, तुम उनके बारे में पढ़ो, उन्हें समझो। तुम्हारे जीवन और विचारों से वे दस-बीस फीसदी मेल खाते हैं या नहीं, इस पर ध्यान दो, तुम्हें जो जचे, उस पर श्रद्धा करो। जिन्हें पढ़ने से, जिन्हें देखने से तुममें कुछ बदलाव आये, कुछ रूपान्तरित होने लगे, उनको अपनी श्रद्धा समर्पित करो। श्रद्धा कोई दो कौड़ी की चीज नहीं है कि जिसे चाहे उसे समर्पित कर दी जाये। प्रणाम सबको हो सकता है, पर श्रद्धा के मायने हैं तुमने अपनी आत्मा अर्पित की, जिसके चरणों में तुम निःशेष हुए।

मैं जैन कुल में पैदा हुआ, पर मुझे बुद्ध से अनुराग है। उनका मध्यम मार्ग मुझे मानवता के काफी करीब लगता है। मैं जीसस को भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने प्रणाम अर्पित करता हूँ। सत्य के प्रति अडिगता और मानवमात्र से प्रेम जीसस की खासियत है। जीसस जैसा महापुरुष ही सूली पर चढ़ते वक्त यह कह सकता है, प्रभु! इन्हें क्षमा कर। ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। पतंजलि से मुझे लगाव है। मेरी साधनागत अनुभूतियां और उपलब्धियां न केवल पतंजलि से मेल खाती हैं, वरन् उनकी बातों, उनके सूत्रों से, मुझे रहस्यों में भी उतरने में मदद मिली है। महावीर, जिन्हें जन्म से ही विपुल ज्ञान और शक्ति का स्वामी मानते हुए भी, वे वैवाहिक जीवन से गुजरे, कैवल्य की साधना में पूरे चौदह साल लगे, उसमें भी जन्मों-जन्मों की साधना साथ थी, सो अलग, अब अगर आम आदमी को लम्बा वक्त लग जाये, तो उदास होने की जरूरत नहीं है। महावीर उसके लिए आदर्श हैं। राम की मर्यादा, कृष्ण का अनासक्त कर्मयोग, मेरे लिए प्रेरक तत्व रहे हैं।

श्रद्धा हो ऐसी, जिसके हम आनुषंगिक हो जायें। जीवन श्रद्धा का सहचर हो जाये। श्रद्धा इतनी मौलिक हो कि किसी और का प्रभाव हम पर प्रभाव न हो पाये। किसी के तर्क हमें डिगा न पायें। किसमें क्या है, यह जानो और अपने को जो जम जाये, जिससे हम प्रेरित हो जायें, उन्हें अपना शीष समर्पित कर दो। अगर ऐसा होता है तो मानो जीवन का एक दीप तुम्हारे हाथ लग गया है। तुम प्रकाश के पथिक हुए। अन्यथा तुम साम्प्रदायिक हो जाओगे। तुम कट्टर हो जाओगे। धर्म के नाम पर तुम सुलहनामों की बजाय कलहनामा ही लिखते रहोगे।

तुम तो जैन होकर भी, महावीर के नाम पर लड़ते हो। हिन्दु होकर भी राम के नाम पर झगड़ते हो। हाँ! अगर एक बाप के पांच बेटे हों, वे आपस में लड़ें तो बात समझ में आती है कि धन-दौलत बांटनी है। तुम तो परमात्मा के नाम पर लड़ते हो। धर्म के नाम पर झगड़ते हो। धर्म, जो मानव-मानव को जोड़ने के लिए जन्मा, सम्प्रदाय, मत, पंथ के दायरों में आकर खतरनाक हो गया है। एक आवाज पर कि इस्लाम खतरे में है या हिन्दुत्व खतरे में है, मारकाट मच जाती है। गाजर-मूली की तरह मानव कटने लग जाते हैं। यह सब धर्म के नाम पर कलंक है। मनुष्य की स्वार्थी राजनीति का परिणाम है यह। आखिर क्यों? क्योंकि सब जन्मजात धार्मिक हैं, कर्मजात धार्मिक कम हैं। फिर चाहे वे हिन्दू हों या ईसाई, जैन हों, पारसी अथवा मुसलमान। जैन कुल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में जन्म ले लिया, अपने को जैन कह लिया, महावीर के प्रति श्रद्धा रख ली, तो क्या जैनी हो गए? सच्चा जैनी वह है जो जैन कुल में पैदा भले ही नहीं हुआ पर महावीर के प्रति आस्था रखता है। इस दृष्टि से तुम ईसाई कुल में जन्म लेकर भी हिन्दु हो सकते हो और हिन्दु कुल में जन्म लेकर भी हिन्दु नहीं हो सकते। जैन, जैन कुल में पैदा हो जाएगा, पर जैनत्व को पैदा नहीं कर पाएगा। जैन कुल में पैदा हो जाएगा, पर जैनत्व के संस्कार से चूक जाएगा। वह धन्य है, जो जैन कुल में पैदा हुआ हो और जीवन में जैनत्व का भी वरण करे। हिन्दु घर में जन्मे और उसकी आत्मा में हिन्दुत्व उतर जाये। हिन्दुत्व की जब मैं बात करता हूं, तो वह हिन्दुत्व यह नहीं है कि जनेऊ पहन लो, चोटी रख लो या मत्थे पर भभूत-चंदन का तिलक कर लो। मेरा मतलब सम्प्रदाय से नहीं, कर्मजात संस्कार से है, आचार-विचार से है।

वैष्णव जन तो तेने कहिये जे,
पीर पराई जाणे रे।
पर दुखे उपकार करे तो ए,
मन अभिमान न आणे रे।।

यदि हम जन्म से ही स्वयं को वैष्णव या जैनी मानने लगेंगे, तो इसका अर्थ तो यह हुआ कि हमने धर्म का संबंध पैदाइश से लगा लिया, जन्म से लगा लिया। जबकि महावीर-बुद्ध ने तो पहली सीख ही यह दी कि जन्म से आदमी कुछ नहीं होता। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी नहीं, तो तुम जैनी या बौद्ध कैसे हो गए?

धर्म का संबंध जन्म या पैदाइश से नहीं होता। खून से भी नहीं होता, खून तो सबका एक सा है। सभी गर्भ से आते हैं। अगर जन्म से ही जैन और अन्य कुछ होने लगे तो हम जन्मजात तो बड़े हिन्दु, जैन हो जाएंगे, लेकिन कर्म से नहीं। लोग कह रहे हैं कि हैदराबाद में कहीं एक बड़ा बूचड़खाना खुल रहा है, जिसके मालिकों में हिन्दु और जैन भी हैं। यह कैसा हिन्दुत्व या जैनत्व है? जैन कुल में पैदा हुए और खुद को जैनी मान लिया। भूल तो मूल में ही हो रही है।

दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं —एक जन्मजात, दूसरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्मजात। जन्म से हिन्दु माना तो आप जन्मजात हिन्दु हुए। ऐसे लोग हिन्दु होकर भी बूचड़खाना चलाएंगे। दूसरी ओर कर्मजात हिन्दु एक चींटी को भी पांव के नीचे नहीं आने देंगे। हकीकत तो यह है कि हिन्दुस्तान में हिन्दु लोग भी मांस-भक्षण करने लगे हैं। अगर हिन्दु लोग बूचड़खानों में शरीक होना बंद कर दें तो दूसरों के पास इतना धन ही कहां है कि वे बूचड़खाने चला सकें। शाकाहारी जातियों में भी आजकल मांस-भक्षण का फैशन होने लगा है।

मांस खाने वाला पशु-वध करने वाले से अधिक दोषी है। उसे अधिक दोष लगता है। माना वह पैसे वाला होगा, पर यह पैसे का दुरुपयोग है, आत्म-समानता का शोषण है। आप गौर करें तो पाएंगे कि एक अपरिग्रही समाज के पास जितना परिग्रह है, उतना एक परिग्रही समाज के पास नहीं है। जितनी हिंसा, ये तथाकथित अहिंसक लोग करते हैं, उतनी और लोग नहीं करते। मनुष्य के चेहरे दो तरह के होते हैं - एक सार्वजनिक, दूसरा निजी। हर आदमी ने मुखौटा लगा रखा है। आदमी खुद को कभी बुरा नहीं कहेगा। भीतर कितनी ही बुराइयां भरी हों वह अपने को अच्छा ही कहता रहेगा। ऐसा आदमी मिलना मुश्किल है जो यह कह दे कि मैं बुरा हूँ, मुझमें अमुक-अमुक बुराइयां हैं।

आज तो भलाई और बुराई की पहचान यही रह गई है कि कोई आदमी अपने को भला कहे, वह तो बुरा और जो बुरा कहे वह भला। जो चोर नहीं है वह कहता है कि मैंने चोरी की है और जो असली चोर हैं, वे कहते हैं कि हम अचौर्य-व्रत का पालन करते हैं। एक पाकेटमार ने किसी की जेब काटी उसे तो हम चोर कहेंगे, लेकिन उस मजिस्ट्रेट को क्या कहेंगे जिसने उस चोर को फंसाने के लिए नियमों का उल्लंघन किया। खुद रिश्वत खाई। वह तो बड़ा चोर हुआ। बड़े चोर हमेशा कटघरे से बाहर रहते हैं। छोटे चोर पकड़ में आ जाते हैं।

साहूकार तो मजिस्ट्रेट या वकील की जरूरत ही न समझेगा। वकील वही रखता है जो खुद चोर होता है। वकील तो वह अपनी बात को सजाने-संवारने के लिए करता है। फिर रिश्वत भी खिलानी पड़ती है। आदमी के दो चेहरे हो गए हैं -एक निजी, दूसरा सार्वजनिक। यहां मेरा सार्वजनिक चेहरों से कोई मतलब नहीं है। उसके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बारे में तो दुनिया सब जानती है। मैं उन निजी चेहरों के बारे में कह रहा हूं जो भीतर छुपे पड़े हैं। जैसे ही निमित्त मिला कि सोया सर्प जाग जाता है।

किसी व्यक्ति ने आपको गाली दी और आपको क्रोध आ गया। क्रोध भीतर सोया पड़ा था, गाली ने तो उसे जगाने में मदद की। क्रोध तो पहले से था। गाली बिलकुल ऐसे है, जैसे किसी कुए में बाल्टी डालो, उसमें पानी होगा तो बाल्टी में पानी आएगा और रेत होगी तो रेत आएगी। क्रोध से, वासना से, अंगारों से भीतर का कुआ भरा पड़ा है। दूसरा आदमी तो सिर्फ उसे जगा रहा है।

जो व्यक्ति कर्मजात हिन्दु, कर्मजात जैन, कर्मजात बौद्ध है वह सही मायने में नेक इंसान है। वास्तव में आदमियों में कोई फर्क नहीं है। सारे फर्क तो जन्मजात स्वरूप को पकड़कर बैठने से हो जाते हैं। कर्मजात जैन और कर्मजात हिन्दु में कहीं कोई फर्क नहीं है। मैं तो कहूंगा कि इस्लाम में भी कोई फर्क नहीं है, बशर्ते आप कर्मजात मुसलमान हों। व्यक्ति अगर नेक जैन बन जाए, अच्छा जैन बन जाए तो भले ही किसी कुल में जन्म लिया हो, क्या फर्क पड़ता है। ऐसा कर लिया तो तुम अपने आप एक अच्छे जैन, एक अच्छे हिन्दू, एक अच्छे बौद्ध, एक अच्छे ईसाई बन जाओगे। इनमें कहीं कोई फर्क नहीं है। महावीर और बुद्ध एक ही युग में हुए, उनमें कोई फर्क नहीं है। फर्क तो उनके बाद आने वाली पीढ़ियों ने किया। महावीर ने सत्य और अहिंसा की बातें कहीं और बुद्ध ने भी। फिरकापरस्ती तो बाद में हुई। मनुष्य की, धर्म में रहने वाली राजनीतिक महत्वाकांक्षा के कारण फिरकापरस्ती होती है।

चाणक्य कहते हैं राजनीति पर धर्म का अंकुश होना चाहिये, पर बेचारा धर्म क्या करे, जब धर्म में राजनीति पूरी तरह काबिज हो जाये। मेरे देखे, फिरकापरस्ती वास्तव में राजनीति है, धर्मों का राजनीतिकरण है। धर्म मनुष्य के आचार-विचार-जीवन को सम्यक् बनाने के लिए है। राजनीति का सम्बन्ध मात्र व्यवस्था से है, व्यवस्थागत है। धर्मों का काम हर अन्तरहृदय में फूल खिलाना है। मनुष्य प्रामाणिक और ईमानदार हो, चित्त की समता बनाये रखे, पवित्र और प्रसन्न रहे, यही धर्म की पृष्ठभूमि है। सारे धार्मिक समान हैं। धार्मिकों में कोई भेद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। भेद तब पनपते हैं जब कोई 'राजनीति धार्मिक' हो।

एक बगीचे में हजार तरह के फूल खिलें, उनके रंग, रूप और खुशबू भिन्न-भिन्न होंगी लेकिन सौन्दर्य सबका एक जैसा होगा। ज्योत चाहे माटी के दीये में जलाओ या सोने के दीये में, उसकी लौ तो एक जैसी ही होगी। हमारे रूप में फर्क हो सकता है, भीतर की आत्मा में कोई फर्क नहीं है।

जिनके लिए बाहर का मूल्य है, वे बाहर के हिसाब से सोचते हैं। यह स्त्री, यह पुरुष। मुझे तो इनमें कोई फर्क दिखाई नहीं देता। मेरी समझ से तो आप अगर अच्छे आदमी बनते हैं तो भले ही स्त्री हो या पुरुष, कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं जब ये बातें कहता हूं तो यह नहीं देखता कि किसी हिन्दू या जैन को कह रहा हूं, किसी महिला या पुरुष को कह रहा हूं। मैं सिर्फ आपके प्राणों को, आत्मा को सम्बोधित कर रहा हूं।

मैं जो कुछ कहता हूं, न उपदेश है, न प्रवचन, न व्याख्यान। वह सिर्फ बातचीत है, आत्मा से आत्मा का संवाद है, किसी समुदाय से नहीं, भीड़ से नहीं। आत्मा व्यक्ति की होती है। यही कारण है कि मेरी समझ में व्यक्ति-व्यक्ति में कहीं कोई फर्क नहीं है। हर जगह वही ज्योति है। क्षुद्र से क्षुद्र जीव में भी।

आप तीन बिन्दुओं पर गौर कीजिये। पहला - आदमी जन्म से कुछ नहीं होता, वह जो भी होता है, कर्म से होता है। हम किसी के प्रति श्रद्धा करें, उससे पहले इतना तय कर लें कि यह श्रद्धा इसलिए नहीं हो कि हमने उस धर्म से सम्बद्ध किसी कुल में जन्म लिया है।

दूसरा - किसी महापुरुष यानी राम, कृष्ण या महावीर के सिद्धांतों की चर्चा भर से कुछ नहीं होगा। हमें उनकी जीवन-शैली, जीवन-चर्या देखनी होगी। तत्त्व के बारे में स्वाध्याय करने से तुम पंडित हो जाओगे, बुद्धि के भंडार भर लोगे लेकिन इससे जीवन-चर्या थोड़े ही बदल जाएगी। महावीर के पास देव आते थे या देवी, इससे हमें क्या? उनके बैठने से समवसरण रचते थे या चलने से उनके पांवों के नीचे स्वर्ण-कमल खिलते थे, इससे हमें कुछ भी लेना-देना नहीं है। देव आए होंगे, समवसरण रचे होंगे, स्वर्ण-कमल खिले होंगे। इससे महावीर की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महिमा बढ़ी, हमें क्या मिला। हमें तो महावीर से वह संबंध रखना है जिससे महावीर की तरह हमारी भी महिमा हो सके। हम महावीर हो सकें।

महावीर के बाह्य रूप पर मत जाओ, उनकी अन्तरस्थिति पर जाओ, जिससे वे महावीर बने। जब देखो तब शास्त्रों की दुहाई मत दो वरन् उस जीवन-चर्या को देखो जिससे महावीर 'महावीर' बने। उनके भीतर शास्त्र पैदा हुए, सिद्धांत बने। सिद्धांतों की चर्चा और उन पर विचार विमर्श करने से, वाद-विवाद करने से, तर्क-कुतर्क करने से हमें महावीर नहीं मिलेंगे। हमें तो उस अन्तरस्थिति पर जाना चाहिए, जिससे महावीर जन्मे, कोई सिद्धांत अनुस्यूत हुआ।

महावीर ने कभी नहीं कहा कि मेरे सिद्धांतों पर चलो। महावीर ने कहा कि तुम स्वयं महावीर बनो ताकि तुम्हारी वाणी भी सिद्धांत बन जाए, तुम्हारी वाणी भी शास्त्र बन जाए। ऐसा प्रयास होना चाहिए। यह किसी का एकाधिकार या बपौती नहीं है कि शास्त्र किसी एक से पैदा हो। हमारे द्वारा ऐसा प्रयास होना चाहिए कि हमारी वाणी भी शास्त्र बन जाए, सिद्धांत बन जाए। इसलिए हमें महावीर की जीवन-चर्या के बारे में सोचना चाहिए, चिंतन-मनन करना चाहिए। बाहर-बाहर या ऊपर-ऊपर हाथ फिराने से हमारे हाथ केवल राख लगेगी। उस राख के भीतर दबी ऊर्जा हमारे हाथ नहीं लगेगी।

मेरे देखे आदमी के हाथ सिर्फ राख लगती है। आदमी मंदिर जाता है, लेकिन वहां रहने वाला स्वामी उसके हाथ नहीं लगता। वहां तो जलने वाली धूप की राख ही मिलती है। असल में महावीर की जीवन-चर्या और अन्तर्दशा पर चिंतन होना चाहिए, जिससे हम भी महावीर बन सकें।

तीसरी मुद्दे की बात यह है कि व्यक्ति तब तक महावीर नहीं बन सकता, जब तक कि वह यह नहीं सोचे कि महावीर भी मेरे जैसे ही मनुष्य थे। लोगों ने यह कोई बुद्धिमानी का काम नहीं किया कि राम, कृष्ण, महावीर को मनुष्य से हटाकर कोई पराशक्ति बना दिया। इसमें भी जबरदस्त प्रतिस्पर्धा चली। हिन्दुओं ने कहा कि शंकराचार्य सोने के सिंहासन पर बैठते थे। बौद्धों ने कहा कि बुद्ध स्वर्णकमल पर आसीन होते थे। जैनों ने कहा, हमारे भगवान जब बैठते थे तो पूरा समवसरण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रचता था।

हम लोगों ने परमात्माओं को प्रतिस्पर्धा की दौड़ में लगा दिया, किसे श्रेष्ठ घोषित करें। अब जब दो परमात्मा हों तो कोई फर्क थोड़े ही होगा। फर्क तो तब होगा, जब एक दीया जला हो और दूसरा बुझा हुआ हो। दोनों दीये जलते हों तो कोई फर्क नहीं होगा। देवताओं का जितना नुकसान उनके अनुयायियों ने किया, उतना किसी ने नहीं किया। परमात्मा को दौड़ की पंक्ति में खड़ा कर दिया।

महावीर श्रेष्ठ हैं, बुद्ध श्रेष्ठ हैं, निश्चित रूप से श्रेष्ठ हैं, लेकिन एक बात ध्यान में रखिये, जिस दिन आप स्वयं परमात्मा बन जाएंगे, बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाएंगे, उस दिन आप में और बुद्ध में कोई फर्क नहीं होगा। और एक दिन तो हर आदमी को परमात्मा होना है। कली है, फूल बनकर खिल जाए तो उसका निर्वाण तो हो गया। ऐसा नहीं है कि निर्वाण केवल मनुष्य को मिलेगा। जिस तत्व में जन्मे हो, उसी में पूर्णता को उपलब्ध कर जाओ, यह तुम्हारा निर्वाण होगा। अगर एक फूल पूरी तरह खिल गया तो समझो वह पूर्ण हो गया। मनुष्य अपने आप में मनुष्य जीवन की पराकाष्ठा को उपलब्ध कर गया, वह पूर्ण हो गया।

पूर्ण या परमात्मा होने पर किसी का एकाधिकार नहीं है। ऐसा नहीं है कि राम, कृष्ण, महावीर ही परमात्मा हो सकते हैं। हर व्यक्ति परमात्मा हो सकता है। केवल अन्तरस्थिति को पहचान कर ही आदमी परमात्मा हो सकता है। ऊपर-ऊपर ही घूमते रहे, मंदिर जाकर मूर्ति को पूज आए, भीतर परमात्मा का निवास नहीं हुआ, तो वह न तो परमात्मा हो सका और न ही सच्ची पूजा हो पाई। बाहर से सामायिक कर ली, मुंहपत्ती बांध ली, भभूत रमा ली, रामचदरिया ओढ़ ली, लेकिन अन्तर्दशा के अभाव में कोरी क्रिया, राख पर किया गया लेपन भर होगा।

अन्तर्दशा बन गई तो ऊपरी तामझाम भले ही करो या न करो, जीवन-चर्या अपने आप समत्वपूर्ण हो जाएगी। सामायिक लेकर आप समत्व को हासिल करना चाहते हैं? लेकिन अन्तर्दशा घटित होने पर व्यक्ति चाहे मुंहपत्ती न बांधे, सामायिक न करे, तो भी उसे समत्व हासिल हो जाता है। ऐसा आदमी अंगारे हाथ में ले लेगा तो भी उसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पता नहीं चलेगा अन्यथा सौ-सौ सामायिक कर लो तो भी राख अंगारा बन जाएगी, जला डालेगी।

यही होता भी है। तपस्या करने वाले अधिकांश लोग चिड़िचड़ाते हैं। मुझे एक संत के साथ रहने का मौका मिला। वे उपवास करते तो गुस्सा भी करते। मैं उनसे कहता कि आप भले उपवास न करें, खाना खा लें। क्रोध शांत हो जाए तो तपस्या अपने आप हो जाएगी, अन्यथा तपस्या केवल शरीर सुखाने की होगी, अन्तर्दशा नहीं बदलेगी।

मनुष्य की विडम्बना यही है कि वह अन्तरस्थिति को नहीं बदल पाता, बाहर ही घूमता रहता है। जंगल में खड़े रहकर तपश्चर्या करने वाले राजर्षि प्रसन्नचन्द्र मनोभावों के कारण मरने पर सातवीं नरक को प्राप्त हो जाते पर अन्तर्दशा सुधरी तो प्रसन्नचन्द्र मुक्त हो गए। उन्हें वेश, पोशाक या लिंग ने मुक्त नहीं किया। इससे हम समझ सकते हैं कि ऊपर का वेश अर्थ नहीं रखता। मनुष्य की दृष्टि सम्यक् और उदात्त हो जाए तो वह क्रोध तो क्या, काम का सेवन भी कर ले तो भी उसके कर्मों की निर्जरा होगी।

तीर्थंकरों, अवतारों ने भी विवाह किये। मतिज्ञान-श्रुतज्ञान आदि के संवाहक होते हुए भी तीर्थंकरों ने विवाह किए। उनके बच्चे हुए। जरा सोचो महावीर ने संसार में आने के दो दिन में ही मेरु पर्वत पर इन्द्र के मन में होने वाली शंका को जान लिया था, तो क्या वे यह नहीं जानते थे कि मैं जो विवाह कर रहा हूं, वह ब्रह्मचर्य में बाधक होगा।

ब्रह्मचर्य का संबंध विवाह से नहीं है। महावीर जानते थे कि भीतर जन्म-जन्मान्तर से संवेग भरे पड़े हैं। मुझे इन्हें भोगकर समाप्त करना है। सम्यक् दृष्टि व्यक्ति चाहे चेतन द्रव्यों का सेवन करे या अचेतन का; सजीव का उपयोग करे या निर्जीव का, उसके द्वारा तो कर्मों की निर्जरा ही होगी। सवाल अन्तर्जागरूकता का है, अन्तर्दशा का है। इसलिए मैंने कहा कि महावीर के सिद्धांतों के बारे में, उनके नारों को बनाने में इतनी उठापटक मत करो। महावीर की जीवन-चर्या के बारे में सोचो, उस अन्तर्दशा के बारे में सोचो, जिससे महावीर 'महावीर' बने।

महावीर शास्त्रों के निर्माण से महावीर नहीं बने थे। वे इसलिए भी महावीर नहीं बने थे कि उन्होंने बहुत सारे सिद्धांत दिये। वे केवल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर्दशा के कारण महावीर बने। इसलिए अपने को कभी जन्मजात धार्मिक या महान मत समझो, आदर्श महापुरुषों की जीवन-चर्या के बारे में सोचो, विचार करो और अपनाओ।

तीसरी बात - हम भी महान बन सकते हैं, ऐसा विचार अन्तरमन में रखो, उसके अनुरूप काम भी करो।

कभी यह मत सोचो कि हम महावीर नहीं हो सकते। हम निश्चित ही महावीर हो सकते हैं; राम, कृष्ण, बुद्ध हो सकते हैं। हममें और कृष्ण में फर्क नहीं है। वे भी मां के गर्भ से आए और हमारा भी मूल वही है। फिर क्या बात थी जो उनमें भगवत्ता साकार हो गई। राम भी तो इंसान थे, उनके पत्नी थी, लेकिन वे भी नकली हिरण के पीछे दौड़ गए थे। फिर भी कोई महिमा, पुण्य ऐसा था कि वे भगवान के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। हम उन्हें याद करते हैं, उनकी पूजा करते हैं। अपने पिता तक को याद नहीं करते। वर्ष में एक-आध बार श्राद्ध पर औपचारिकताएं जरूर कर लेते हैं पर राम को, कृष्ण को याद करते हैं, नाम-सुमिरन करते हैं।

सीता ने लक्ष्मण-रेखा का उल्लंघन किया और इसका दुष्परिणाम भी उन्होंने भोगा, लेकिन हम उन्हें याद करते हैं। आर्द्र कुमार, जिनके जीवन पर शास्त्र तक रचे गए हैं, गृहस्थ से साधु और साधु से गृहस्थ बने और पुनः साधु बन गए; फिर भी हम उनका पुण्य स्मरण करते हैं। अपने जीवन के लिए उन्हें किरण मानते हैं, जरूर यह कोई विशेष बात है। यह उनकी अन्तर्दशा का ही पुण्य प्रताप है।

बीज सबके एक जैसे हैं, अन्तर सिर्फ पल्लवन का है। कोई बीज बीच में ही समाप्त हो जाता है, कोई बरगद बन जाता है। हम सभी जीवन के दुर्गम, दुविधा-भरे मार्ग से गुजर रहे हैं। बुद्ध भी ऐसे ही गुजरे थे। लोगों ने उन्हें कितनी ही गालियां दीं, लेकिन वे अपनी राह चलते गए और आज हम उनकी पूजा करते हैं। उनके लिए गाली, गाली नहीं थी क्योंकि वे अमृत हो चुके थे।

आप पच्चीस सौ वर्ष पुराना इतिहास उठाकर देख लीजिये। तब भी लोगों ने महापुरुषों को नहीं बख्शा। आज के युग में भी यदि महावीर और बुद्ध होते, उनकी कम उठा-पटक ठोक-पीट नहीं होती।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आज तो लोग उन्हें कहीं का नहीं छोड़ते।

तीन बिन्दु हमेशा ध्यान में रखें। पहला - जन्म से कोई महान नहीं होता, कर्मों से महान बनता है। दूसरा - आदर्श महापुरुषों की जीवन-चर्या को समझो, उसके अनुरूप आचरण करो और तीसरा, हम भी महावीर-बुद्ध हो सकते हैं आत्मा में यह विश्वास स्थापित करो। हम अंधकार से प्रकाश की ओर जाने का अभिक्रम कर जीवन में आमूलचूल परिवर्तन ला सकते हैं।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय'। चलें प्रकाश की ओर, विराट् की ओर महावीरत्व और बुद्धत्व की ओर। हमारे कार्य ही हमारे लिए हजारों आशीष बन जाएं। हमें न कहना पड़े 'तमसो मा ज्योर्तिगमय'। हमारे कार्य ही ज्योर्तिमय हो जाएं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मानव स्वयं एक मंदिर है

पुरानी कहानी है। मूसा जानवरों की भाषा के जानकार थे। एक बार एक आदमी उनके पास आया और उनसे आग्रह करने लगा कि उसे भी यह विद्या सिखा दें। मूसा ने इनकार कर दिया। लेकिन वह व्यक्ति रोज-रोज मूसा के पास आने लगा तो वे बड़े परेशान हुए। आखिर एक दिन उन्होंने यह विद्या सिखा कर अपना पीछा छुड़ाया। जानवरों की बोली समझने की विद्या सीखकर वह व्यक्ति बड़ा प्रसन्न हुआ। उस आदमी का जानवरों की खरीद-फरोख्त का धंधा था।

एक रोज सुबह जब वह बाड़े में चक्कर लगा रहा था तो उसने मुर्गा-मुर्गी को बोलते हुए सुना। मुर्गा कह रहा था कि अपने बगल में जो गधा खड़ा है उसकी दो दिन बाद मृत्यु हो जाएगी। उस व्यक्ति ने उसी दिन बाजार में जाकर वह गधा बेच दिया। वह गधा दो दिन बाद वास्तव में मर गया। वह व्यक्ति बहुत खुश हुआ। एक सप्ताह बाद उसने सुना कि उसके घोड़े की अगले दिन शाम को मौत हो जाएगी। वह सुबह ही घोड़े को बाजार में बेच आया। इसी तरह उसने एक खच्चर को भी बेच दिया। वह बहुत खुश था कि उसने काफी नुकसान बचा लिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कई दिन बीत गए। एक दिन मुर्गा-मुर्गी का वार्तालाप उसके लिए गाज गिराने वाला था। मुर्गा कह रहा था कि दो दिन बाद अपने मालिक की मौत होने वाली है। उस व्यक्ति के तो होश ही उड़ गए। वह भागा-भागा मूसा के पास गया और उनसे आग्रह करने लगा कि उसकी जान बचाने की जुगत बताएं।

यह एक वास्तविकता है। मरना कोई नहीं चाहता। न तुम, न मैं। सभी जीना चाहते हैं। दूसरों की मृत्यु से फायदा उठाने वाले भी स्वयं की मृत्यु की कल्पना मात्र से सिहर उठते हैं। मृत्यु जीवन का अभिन्न सत्य है पर मनुष्य इसे कभी सहज स्वीकार नहीं कर पाया। सभी न केवल जीना चाहते हैं, बल्कि स्वस्थ, सुखी जीना चाहते हैं। लेकिन कैसी विडम्बना है कि इच्छा तो है स्वस्थ, सुखी जीवन की और उपाय सारे हो रहे हैं अस्वास्थ्य के, तनाव के, मृत्यु के।

पदार्थगत सुख-सुविधाओं के ढेर जुटाने की अंधी दौड़ में शामिल होने वाला मूसा का कोई भी शिष्य यह नहीं समझ पा रहा है कि मालिक रहेगा, तो ही माल बचाने का कोई अर्थ होगा। मालिक ही जा रहा है तो माल बचाने का औचित्य ही नहीं है। कीमत तो मालिक की है, माल की नहीं। माल की कीमत भी मालिक के कारण ही है। युगों-युगों से हम माल को बचाने की फिक्र में मालिक की उपेक्षा करते आए हैं। ऐश-ओ-आराम के साधन तो बहुत जुटाए पर उनके अविवेकपूर्ण उपयोग से हमने अपना स्वास्थ्य खो दिया।

जीवन की सार्थकता के लिए स्वास्थ्य पहला बिन्दु है। पहला सुख, पहला सौन्दर्य ! स्वास्थ्य-लाभ के अभाव में जीवन नरक जैसा दुःखद है, भार-रूप है। स्वास्थ्य बेहतर हो, तो जीवन न केवल स्वर्ग की विभूति बन जाता है, वरन् विकास के, हर तरह के पहलू हमारे हाथ होते हैं। व्यक्ति की स्वस्थता और प्रसन्नता जीवन के दो अनिवार्य पहलू हैं। बेहतर होगा हम अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग बनें। कष्ट और पीड़ा भोगकर अपने आपको मजबूर और कमजोर न बनाएं।

मनुष्य के पास अनमोल संपदा और संभावनाएं हैं। कोई व्यक्ति अपने को दीन-हीन समझता है तो यह उसकी कमजोरी है। गरीब से गरीब व्यक्ति के पास लाखों रुपये की संपदा है। मनुष्य का एक-एक अंग कीमती है। यदि कोई बेचने को तैयार हो तो अपनी एक आंख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

या एक गुर्दा बेचकर लाखों कमा सकता है। पर अफसोस हम अपनी इस कीमती संपदा को या तो अतिपोषण देकर या अति उपेक्षा से चौपट करते चले जा रहे हैं। साधना या साधनों का उपभोग करते हुए हम अपने स्वास्थ्य पर जरा भी ध्यान नहीं देते। पर यह बात समझने की है कि अस्वस्थ शरीर से न तो साधनों का सुखप्रद उपभोग संभव है, न ही साधना।

अध्यात्म ने शरीर की उपेक्षा करना ही सिखाया है, पर वस्तुतः धर्म के मार्ग पर भी शरीर बाधक नहीं, साधक ही है। मैं आपको यह संदेश देना चाहता हूं कि मानव स्वयं एक मंदिर है। आत्मा, काया का आधार लेकर ही स्वयं को प्रकट करती है। यह शरीर परमात्मा के निवास का मंदिर है, इसलिए उपेक्षा की विषय-वस्तु नहीं है। मूर्ति के होने से ही मंदिर की अर्थवत्ता है, यह सत्य है पर मंदिर के होने से ही मूर्ति सुरक्षित है, यह भी तो झूठ नहीं है। इसलिए यह शरीर उपेक्षा की वस्तु नहीं है। यह अमूल्य है। इससे मैत्री करना सीखो।

स्वास्थ्य जीवन की पूंजी है। जीवन का अर्थ उसके आनंद में है, उसके सौन्दर्य में है, उसके उत्सव में है, जीवन को पूरी तरह जीने में है। त्यौहारों में वे लोग शामिल होते हैं, जिनका जीवन पर्व नहीं बन पाया है। पर्व के दौरान आदमी इसीलिए खुशहाल हो जाता है। वह भीड़ के बीच जाकर खुश होता है। उसके जीवन में तो रुग्णता है, असंतुष्टि है। जीवन स्वयं एक पर्व हो सकता है। जो लोग रुग्ण चित्त हैं, वे वास्तव में नरक जी रहे हैं। इसके विपरीत जो लोग आनंद चित्त हैं, वे स्वर्ग में जी रहे हैं। चाहे अनुकूलता हो या प्रतिकूलता, वे सदा स्वाभाविक आनंद में मग्न रहते हैं।

इस जीवन को सुन्दर और स्वस्थ बनाने के लिए आपको वाग्भट्ट का सूत्र देना चाहता हूं। मैं नहीं चाहता कि हम मुर्दे की तरह जियें। आपका जीवन भी उत्सव हो सकता है इसलिए मैं आपको संबोधि के, अन्तर्-स्वास्थ्य के कुछ दीप थमाना चाहता हूं। इससे भीतर का अंधकार समाप्त होगा और सुन्दरता में भी वृद्धि होगी। जीवन को आनंद और उत्सव से जीना ही इसकी सार्थकता है। वाग्भट्ट ने इस सूत्र में बहुत ही कीमिया बातें कही हैं।

नित्यम् हिताहार विहार सेवी, समीक्ष्यकारी विषयेक्त सक्तः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दाता समः सत्यपरः क्षमावान्, आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।।

'नित्यम् हिताहार विहारकारी' इसका अर्थ है - आदमी सम्यक् और संतुलित आहार-विहार करे। आदमी जैसा खाता है, उसका मन भी वैसा ही हो जाता है। मन में, शरीर में चेतना आती कहां से है, भोजन से ही तो। उपनिषदों में कहा गया है- अन्नम् ब्रह्म। अथवा अन्नं वै प्राणाः। अन्न से ही शरीर का विकास होता है। इतना भी न खायें कि आलस्य पैदा हो और इतना कम भी न खाएं कि जीना ही मुश्किल हो जाए। ऐसा न खाएं कि शरीर में उत्तेजना पैदा हो, तामसिक वृत्तियाँ आप पर हावी हो जाएँ। शरीर को उत्तेजित करने से शरीर की कुरूपता बढ़ती है। हमें ऐसा आहार नहीं करना चाहिए जो हमें मादकता दे, हमारे शरीर को क्षीण कर दे।

व्यक्ति शराब पीता है और उसे आनंद आता है, ऐसा नहीं है। वास्तव में यह आनंद नहीं है, मूर्च्छा है। शराब आदमी के शरीर के सैल्स को निष्क्रिय कर देती है और वह निढाल होने लगता है। उसका मस्तिष्क गलत दिशा में चलने लगता है। इससे कई विषमताएं उत्पन्न होने लगती हैं। इसलिए आहार सम्यक् ही होना चाहिए।

दूसरी बात है सम्यक् विहार। आदमी खाता तो चौबीस घंटे है लेकिन विहार नहीं करता। विहार के अभाव में शरीर का नियमित चक्र गड़बड़ाने लगता है। खाना तो आदमी दस बार खा लेगा लेकिन शौच एक बार ही जाएगा। विहार और व्यायाम न होगा तो एक बार भी शौच जाने के लिए तरसेगा। शरीर तो जितनी जरूरत है उतना ही पचा सकता है। अधिक खाओगे तो विषमता पैदा होगी।

कुछ लोग निःसंकोच रक्तदान करते हैं। कुछ ऐसा करने से घबराते हैं। आप जो भोजन करते हैं, उसके रस से ही तो खून बनता है। रक्तदान करने से कमजोरी थोड़े ही आती है। तीन दिन में उतना रक्त फिर बन जाता है। लेकिन यदि शरीर में खून की मात्रा उचित है तो अधिक भोजन भी और खून नहीं बना सकेगा। शरीर की ग्रंथियों का हिसाब ही ऐसा है। दिन-रात भोजन-भोजन करते रहते हो। इसे रोको। पेट को तंदूर बनाते चले जाओगे तो तुम्हारा भला न होगा।

व्यायाम क्या है? प्राणों के आयाम को विस्तार देना ही व्यायाम है। इससे खून की गति बढ़ेगी, आप में चुस्ती आएगी। आदमी सुबह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उठता है, भोजन करता है दिन भर स्कूटर पर सवार रहता है। रात्रि में भोजन करके बिस्तर पर पड़ जाता है। यही कारण है कि वह जो खाता है, शरीर को स्वस्थ नहीं बना पाता। मल का ही निर्माण होता है। शरीर की ऊर्जा भीतर ही भीतर दूषित होती रहती है।

वाग्भट्ट कहते हैं कि सम्यक् आहार हो, सम्यक् विहार हो। अपने शरीर, प्रकृति, आयु, ऋतु, समय, देश इन सब बातों पर विचार करके अनुकूल और लाभदायी खाने-पीने की चीजों का इस्तेमाल होना चाहिये। स्नान, व्यायाम, सैर, मेहनत, जगना-सोना आदि भी समुचित हो। अच्छे स्वास्थ्य के लिए यह जरूरी है।

'समीक्ष्यकारी'-सोच-समझकर काम करो। बिन सोचे काम कर बैठे तो बाद में पछताना पड़ेगा। जोश और जल्दबाजी पर नियन्त्रण रखने वाला, मानसिक कष्टों से अपने आपको बचाकर रख सकता है। मैं तो कहूंगा, आदमी जो कुछ भी करे, सोच-समझकर करे ताकि उसे बाद में पछताना नहीं पड़े। कुछ भी करो, पहले सोचो। लगता है कि बुरा हो रहा है तो उस काम को तुरंत रोक दो, गलती होने से बच जाएगी। केवल आसन कर लेना ही संयम नहीं है। जब आदमी को लगे कि उससे गलत काम हो रहा है तो उसी समय उसे रोक देना भी संयम ही है।

वाग्भट्ट का अगला सूत्र है - विषयों के प्रति आसक्ति न हो। आदमी को उपयोग-उपभोग तो जरूर करना चाहिए, लेकिन आसक्ति नहीं रखनी चाहिए, अनासक्त हो जाना चाहिए। हम तो इंद्रियों का आनंद उठाने में इतने मशगूल हैं कि हमें इनसे परे कुछ और नजर ही नहीं आता।

आंख का रस है - देखना। रूप देखना। पतंगा इसीलिए तो जल जाता है और अपने प्राण गंवाता है। वह शमा से आकर्षित होता है। कान का रस है - सुनना। हरिण बांसुरी सुनकर वहां पहुंच जाता है, जहां से वापस लौटना उसके बस में नहीं होता। नाक भी कम नहीं है। इसका काम है - सूंघना। गंध पाकर भंवरा फूल के आसपास मंडराने लगता है और उसके भीतर बैठकर आनन्द लेने लगता है। शाम होते ही पंखुड़ियां बंद होने लगती हैं और उसके प्राण-पखेरु उड़ जाते हैं। जीभ का रस है - स्वाद। कांटे में फंसा आटा देखकर मछली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसकी ओर आकर्षित होती है और अन्ततः कांटे में फंस जाती है। हमारा हाल ऐसा ही है। इंद्रियों के जाल में फंस कर हम अपना जीवन समाप्त कर बैठते हैं।

हर आदमी भूखा है। राजा हो या रंक, भूख सबको है। भूख है, क्योंकि आदमी के मन में अहंकार है। वह तारीफ़ का भूखा है। आदमी मित्र भी इसलिए बनाता है क्योंकि वह प्रेम का भूखा है, मैत्री का भूखा है। जीवन का खालीपन भरना चाहता है। भूख के कारण ही सब चल रहा है। भूख न हो तो परिवार, समाज आदि किसी की जरूरत नहीं होगी।

मनुष्य पुत्र चाहता है, ताकि उसका वंश चले। विवाह करता है क्योंकि वासना की भूख है। समाज में दान करता है क्योंकि प्रतिष्ठा की भूख है। संन्यास लेता है, क्योंकि मुक्ति की भूख है। हर आदमी भूखा है, क्योंकि जीवन के सुखों को पाने की भूख है। जी रहे हैं, क्योंकि जीना चाहते हैं। रुग्ण होकर भी जीना चाहता है। चेहरा उतरा हुआ है, लेकिन जी रहा है। व्यक्ति के जीवन का यह तो कोई अर्थ नहीं हुआ।

मुँह में डेढ़ इंच की जीभ भी क्या-क्या कमाल दिखाती है। आप भोजन करते हैं, वह जीभ पर कुछ ही क्षण रहता है। इसलिए इसकी आसक्ति क्या ठीक है? जरा विचार करें। विषयों के प्रति आसक्ति आदमी को कहीं का नहीं रखती। आदमी शरीर चलाने के लिए भोज और भोग में मशगूल रहता है। ऊर्जा का क्षय होता रहता है। यह फैक्ट्री तो यूं ही चलती रहती है। आखिर जीवन का उपसंहार क्या हुआ?

शारीरिक स्वास्थ्य के साथ हृदय की सुंदरता, मानसिक स्वास्थ्य भी जरूरी है। लेकिन हमें हमारे हृदय की कितनी बार याद आती है? लिपिस्टिक लगाते समय इस चमड़ी के भीतर कितनी मूल संभावनाएं हैं, वहां तक क्या हमारी पहुंच हो पाती है? जीवन इसीलिए तो बदसूरत बना हुआ है। अन्तर्-सौन्दर्य पर ध्यान न देने के कारण ही मनुष्य शरीर मात्र बनकर रह गया है। बाह्य-सौन्दर्य तात्कालिक प्रभाव देता है, पर अन्तर्-सौन्दर्य, हृदय का लालित्य प्रभावकता को शाश्वतता प्रदान करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हृदय की सुन्दरता जीवन भर रहती है, जन्म-जन्मान्तर रहती है। मजनूं लैला का दीवाना था। क्या आप जानते हैं कि लैला गोरी नहीं सांवली थी। यह तो मजनूं की आंखों का कमाल था जो उसने अपने साथ लैला को भी चर्चित कर दिया। यह खूबसूरती चेहरे की नहीं थी। यह तो भीतर की सुन्दरता थी, जिसे मजनूं ने देखा। हम सजते हैं, संवरते हैं लेकिन यह सब ऊपर की सजावट है। हम भीतर नहीं झांकते और न ही भीतर से सजते-संवरते हैं। आखिर ऊपर-ऊपर की सुन्दरता हमें कब तक बचाएगी?

यह जग छल से भरा पड़ा है। चेहरा बहुत सुंदर मिलेगा लेकिन भीतर देखोगे तो गंदगी ही गंदगी नजर आती है। चेहरा ही खूबसूरत है तो क्या फायदा, दिल भी तो सुन्दर होना चाहिए। चेहरा तो मुखौटा भर है। अगर हम अपने जीवन को सुन्दर, अप्रतिम बनाना चाहते हैं तो जीवन का मूल्य समझना होगा। व्यक्ति के लिए जीवन से बढ़कर कुछ भी नहीं है। जीवन तो परम है। इससे बढ़कर इसके और कोई प्रतिमान नहीं हैं।

लेकिन आदमी जीवन को आनंद से नहीं जी पाता। हमारे हाथ से जीवन की कला छूट गई है। हर आदमी अपने शरीर को ही सुन्दर बनाने का प्रयास करता है। अच्छे कपड़े पहनता है। सजता-संवरता है, लेकिन मन को सुन्दर बनाने का प्रयास नहीं करता। वह अपने घर को सजा लेगा, लेकिन हृदय के घर की तरफ ध्यान नहीं देगा। व्यक्ति चौबीस घंटे सुन्दरता की तरफ ध्यान देगा, लेकिन भीतरी सुन्दरता से विमुख रहेगा। चेहरे की खूबसूरती तो दो दिन की है। वह कुछ दिन आपका प्रभाव बनाए रख सकती है, लेकिन आत्मा की खूबसूरती ही शाश्वत होती है।

वाग्भट्ट के सूत्र जीवन के लिए बहुत कीमती हैं। वे कहते हैं - दाता बनो। अपने द्वार पर आए व्यक्ति को कुछ दो। परमात्मा से प्रार्थना करो कि वह हमें इतना सामर्थ्यवान बनाए कि हम देने योग्य हों। हमारे द्वार पर आया कोई भी व्यक्ति खाली न जाए। दुश्मन भी आ जाए तो अतिथि मानकर सेवा करो। वह दुश्मन नहीं, भगवान का रूप है। घर के हर सदस्य को मेहमान समझो। घरवालों को भी मत भूलो। घर में कोई मेहमान आता है तो पत्नी उसे मिठाई खिलाती है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मगर पति को नहीं खिलाती। यह तो कोई तरीका न हुआ। अगर मानव को मंदिर मानने की समझ विकसित हो जाए तो अतिथि और घरवाले का यह भेद मिट जाएगा। औपचारिकता और उपेक्षा के स्थान पर स्नेह और सजगता स्थापित हो जाएगी। हृदय आनंद और उदारता से परिपूर्ण रहेगा।

वाग्भट्ट के सूत्रों में आपको जीवन का निचोड़ मिल जाएगा। वे कहते हैं - आदमी को समदर्शी होना चाहिए। भले कोई आपकी निंदा या तारीफ करे, आप तो अपना कर्त्तव्य पूरा करते चलिये। दुनिया के हिसाब से चले कि तारीफ हो रही है तो धोखा खा जाओगे। लोग ऊपर से तारीफ करते हैं और पीछे हाथ में छुरा रखते हैं। इसलिए अपने जीवन के उद्देश्यों का, सिद्धान्तों का, तौर-तरीकों का निर्माण दुनिया के हिसाब से मत करो, स्वयं के हिसाब से करो। 'तू तो राम सुमिर, जग लड़वा दे।' आदमी को आगे बढ़ना है। कर्मयोग का सिद्धांत यही कहता है। कोई बुराई करे या प्रशंसा, समदर्शी बने रहो। चाहे कोई कटुवचन कहे या मीठा बोले, आप तो समदर्शी हो जाओ। इसी का नाम तो संत-स्वभाव है।

समदर्शिता तुम्हें सबका प्रिय बनाएगी। अशान्ति से बचे रहोगे। शान्ति का सार्थक सूत्र है-समदर्शिता। सबको बराबर समझो। प्रिय हो या अप्रिय, जो जैसा है, उसे जानो और स्वयं को उद्विग्न किये बगैर अपने चित्त की समता बनाये रखो। यानी खुशी में आपे से बाहर मत आओ और शोक में पागल मत बनो।

वाग्भट्ट अगले सूत्र में कहते हैं -सत्य वक्ता! आदमी को सत्यवादी होना चाहिए। इससे उसमें निडरता-निर्भयता आएगी। झूठ बोलोगे तो और कई झूठ हमारा दामन पकड़ लेंगे। झूठ का अर्थशास्त्र ऐसा ही है। वहां एक और एक दो नहीं, ग्यारह हो जाते हैं। निर्भय होना है तो सत्य बोलना सीखो। क्रोध से बचना चाहते हो तो पवित्र बनो, विचारों में विवेक जगाओ। गंभीर बनना है तो बुद्धिमान लोगों की संगत में जाओ।

सत्य बोलो, सुखी रहो। कोई चिंता, न भय। सत्यवान् तो निश्चिंत सोता है और निर्भय विचरता है। क्षमावान् को क्रोध नहीं आता। चूंकि क्रोध नहीं आता, इसलिए मानसिक शांति भग्न नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होती। अच्छे लोगों की संगति होगी, तो अच्छे संस्कार आएंगे। अच्छे कर्म करने की ओर प्रेरित होओगे। मन में गंभीरता, स्थिरता और विवेक बना रहेगा।

जीवन में धन तो आता-जाता रहता है। उसके लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है लेकिन आपकी सज्जनता चली गई, तो समझ लो सब कुछ चला गया। सज्जनता होगी तो जीवन ऊंचा उठेगा, उसके मूल्य ऊंचे उठेंगे। ये सूत्र नहीं संबोधि के दीप हैं जो आपके आगे जलाये हैं। इन्हें थाम कर, स्वीकार कर जीवन को आरोग्यपूर्ण, संस्कार-युक्त बनाएं। ये आपके काम आएंगे।

मानव स्वयं एक मंदिर है। काया मंदिर है और भीतर बैठी चेतना, इस मंदिर का देवता है। सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए जीवन के बाह्य और आन्तरिक दोनों पहलुओं पर ध्यान दें। मंदिर की स्वस्थ देखभाल होनी चाहिये। शरीर और मन, पूरी तरह स्वस्थ, प्रमुदित, व्यसनमुक्त हों, यह जरूरी है। चाहे मैं होऊं या आप, हर आम आदमी के लिए ये सूत्र जीवन के हर मोड़ पर ध्यान रखने योग्य हैं।

नित्यं हिताहार विहार सेवी,
समीक्ष्यकारी विषयेक्त सक्तः
दाता समः सत्यपरः क्षमावान्
आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्मान करें जीवन का

जीवन शुभारम्भ है। जीवन ही अस्तित्व का व्यक्तित्व है। जीवन ही अस्तित्व की अभिव्यक्ति है। जीवन जगत की आत्मा है और जगत् जीवन का मन है। जगत् जीवन की ही प्रतिध्वनि है। जीवन के विस्तार का नाम जगत् है। जन्म जीवन का आरम्भिक मंगलाचरण है और मृत्यु अस्तित्व की विराटता में प्राणों का विलय है। जीवन है तो सारे मूल्य हैं, जीवन के अभाव में मूल्य का कोई अर्थ नहीं होता।

जीवन सर्वोच्च मूल्य है। भला-बुरा, धरती पर जो कुछ भी किया जाता है सब जीवन के लिए ही है। जीवन को बनाने और बचाने के लिए है। औरों के साथ कोई कितना भी खिलवाड़ करे, पर अपने जीवन का सवाल आते ही हर आदमी सजग सतर्क हो जाता है।

व्यक्ति जीवन भर धन-दौलत बटोरता है। वह सारा धन उस समय धरा रह जाता है जब जीवन के बचने और न बचने का प्रश्न उपस्थित हो जाए। भूकम्प आने पर हर कोई अपने जीवन को बचाना चाहेगा। वह बिसर ही बैठेगा कि उसने इतनी सम्पदा अर्जित की है। कहते हैं न 'जान बची तो लाखों पाये'। प्राण है तो सब है, अन्यथा कुछ भी नहीं।

मनुष्य के जीवन में इतनी आपा-धापी क्यों है? वह सवेरे से शाम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तक इतनी मेहनत क्यों करता है? इतना झूठ-सांच आखिर किसलिए? एक ओर करुणा तो दूसरी ओर क्रूरता, क्यों? हर सवाल का जवाब होगा जीवन के लिए, जीवन के सुख-साधनों के लिए। नित नये आविष्कार हैं तो जीवन के लिए, अध्यात्म और शास्त्र हैं तो जीवन को ऊँचा उठाने के लिए। धन-दौलत, परिवार, नौकर-चाकर, सब जीवन की पैरितृप्ति के लिए हैं।

जीवन के उत्थान के लिए ही इतने विद्यालय-विश्वविद्यालय खुले हैं। जीवन की स्वस्थता के लिए ही इतने चिकित्सालय और चिकित्साविद् लगे हैं। चलचित्र से लेकर राजनीति तक और अखबारों से लेकर उपनिषदों तक के सारे क्षेत्र-परिक्षेत्र जीवन के धरातल पर ही फल-फूल रहे हैं। इसलिए जीवन धरती का पहला आराध्य और पहली आराधना है।

जीवन के लिए जीवन का अर्थ है, स्वार्थ-परार्थ का नहीं। जीवन तो जीवन ही है फिर चाहे वह अपना हो या किसी और का। जीवन के प्रति श्रद्धा का साधारणीकरण हो जाये, तो स्वार्थ-परार्थ की अलगाववादी भेद-रेखाएं भर जायें। फिर सिर्फ अर्थ होगा, अर्थवत्ता होगी। आदर होगा, वह आदर ही उपासना होगी।

जीवन का सम्मान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जिसका जीवन के प्रति सम्मान और आदर नहीं है, वह मानवता के घर में रहने वाला इकार-रहित शिव है। परमात्मा तो बहुत दूर की बात है, उसमें मानवीय प्रेम, करुणा, अहिंसा और भाईचारे का भी नामोनिशान नहीं होगा। वह वंचित है जीवन के रस से, जीवन के आनन्द से, जीवन की उपलब्धियों और मूल्यों से, जीवन के परिपूर्ण उत्सव से।

आत्म-संत्रास के दौर से गुजरते विश्व को आज मात्र ईश्वर की उपासना और उसके पूजा-स्थलों पर माथा टेकते रहने की आवश्यकता नहीं है, उसके लिए प्राथमिक धर्म, हृदय में जीवन के प्रति सम्मान और आदर को प्रतिष्ठित करना है। जीवन चाहे मेरा हो या तुम्हारा, जीवन तो जीवन है। जीवन में ईश्वर का नूर है। जीवन का सम्मान स्वयं घट-घट में बसने वाले परमात्मा का ही अभिवादन है, ईश्वर-अल्लाह की इबादत है।

धरती पर सैकड़ों-हजारों धर्म पैदा हुए। जहां देखो ईश्वर की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपासना पर सर्वाधिक बल दिया गया है, लेकिन जीवन की पूजा करनी किस धर्म ने सिखायी? मनुष्य को मनुष्य बनाना किस धर्म ने अपना मकसद बनाया? मानव की सेवा के कितने मंदिर बने? भारत को ही लें। यहाँ दो तरह के धर्म हैं- एक तो वे जो ईश्वर का नाम जपने पर, पूजा-स्थलों में मालाएं फेरने पर जोर देते हैं। नतीजा यह निकला कि भारत की पौनी न सही, तो कम से कम आधी आबादी तो जीवन के वरदानों को हासिल करने के लिए ईश्वर को ही खुश करने में लग गई। यदि वह ईश्वर को भी सही तौर पर स्वयं में निहार लेती तो बात बन जाती, पर ईश्वर तो न जाने उससे कितना पीछे छूट गया। मनुष्य अपने ही हाथों माटी-पत्थर की बनाई छवियों को ईश्वर मान बैठा। उसे ही पूजने लगा। उस पर दूध और चंदन का अभिषेक करने लगा। ईश्वर की कितनी पूजा हुई, यह तो ईश्वर जाने, पर पंडे-पादरी-पुजारियों के स्वार्थ जरूर सधते रहे।

कोई पूजा पाठ करे, मुझे एतराज नहीं, पर ईश्वर का इतना महान भक्त कहलाने वाला इन्सान, इन्सान को ही दुत्कार बैठे! इंसान-इंसान के बीच सवर्ण-हरिजन, ऊंच-नीच, गोरा-काला की घृणा भरी लौह-दीवारें खड़ी करे, तो यह कौन-सी उपासना हुई। तुम आसमान के तारों को गिनते फिरो और पांव के पास खिले फूलों को रौंदो या नजर-अन्दाज करो, यह कौन-सा धर्माचरण या चरित्र हुआ? मानवता भूखी मरे और हम 'अखंड दीप' के नाम पर घी का जुगाड़ करते फिरें। आखिर किस धर्म-प्रवर्तक ने कहा कि तुम मेरे लिए दीयों को घी पिलाते रहो। बेहतर होता, इंसान को ही एक दीप समझा जाता। उसे ही ज्योतिर्मय और जीवित रखने के लिए उसमें घी का अर्घ्य-दान किया जाता। मानव, मानव के काम आता।

एक ओर अट्टालिकाएं बस रही हैं, दूसरी ओर झोंपड़ियां उजड़ रही हैं। भवन व्यक्ति के स्वार्थ हैं और गिरजा-गुरुद्वारा मनुष्य के परमार्थ हैं, तो क्या सड़क पर नंगे बदन ठंड में ठिठुरते हुए सोने वाले व्यक्ति को रहने के लिए एक कुटिया बनाकर देना परमार्थ नहीं है? क्या उसके बदन पर मोटा या सस्ता ही सही, एक कम्बल ओढ़ा देना परमात्मा की निष्काम-सेवा नहीं है? मंदिर जाते वक्त रास्ते में रो रहे किसी अनाथ बच्चे के आंसू पोंछना परमात्म-सेवा के बाहर है? प्रतिमूर्ति पर तुम सोने के जेवरात चढ़ाओ, यह तुम्हारी श्रद्धा का अतिरेक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर मंदिर की सीढ़ियों के पास दो-दो पैसे भीख मांगते आदमी का पेट भरवाने की व्यवस्था करवाना परमात्मा के स्वर्णाभिषेक से कम कीमती नहीं है। वैभवशाली पूजा-स्थलों के सामने खड़ा भूखा-बेसहारा इंसान! मनुष्य की परमार्थ-प्रक्रिया पर इससे बड़ा व्यंग्य क्या होगा?

कई लोग किसी प्रतिमूर्ति को बैठाने के लिए लाखों-करोड़ों का चढ़ावा बोल जाते हैं। किसी परम्परागत स्वीकृत वस्तु को 'दर्शन' कराने या माला पहनाने के लिए धन खर्च करने की होड़ लगाना, जलसों में हाथी-घोड़ों की ऐश्वर्यभरी कतार दिखाने के लिए अनाप-शनाप खर्च करना; जो ऐसा करते है, यह उनकी मौज! पर ऐसे लोग रुग्ण मानवता की कितनी सेवा कर रहे हैं? अस्पतालों, अनाथालयों, विकलांग-केन्द्रों में अपने तन-मन-धन का कितना अवदान दे पाते हैं? हां! मानवता की सेवा और उत्थान की बातें तो चाहे जितनी करवा लो, पर कृत्य के स्थान पर केवल दिखावा है।

हर पूजा, पूजा-पद्धति और पूजा-स्थल का अपना महत्व है, आवश्यकता है, पर इनका महत्व और बढ़ सकता है यदि हमारे मन में जीवन के प्रति सम्मान जगे। फिर हम इनका उपयोग भी जीवन के लिए करेंगे, न कि अपने स्वार्थ के लिए या परलोक को सुधारने के लिये। हम धर्म के क्रिया-कांडों में तो गहराई तक गये। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तत्त्व को भी पकड़ा, चींटी को बचाने की काफी कोशिशें की गईं पर मनुष्य .....! मेरे देखे, मूल जीवन से धर्म फिसल गया। तप खूब हुआ, पर उससे क्रोध-कषाय का कूड़ा-कर्कट नहीं जला। भिक्षु का काषाय-वस्त्र तो सदा ओढ़ा जाता रहा, पर अन्तर के कषाय नहीं छूटे। आराधना खूब हुई, पर पाप से प्रतिक्रमण नहीं हुआ। हमने केवल अपने पुत्र की चिंता की, औरों के लिए दवा में मिलावट, घी में मोम, मैदा और चर्बी मिलाने में एक नन्हीं-सी हिचकी भी नहीं खाई। मछलियां सूखी थीं, इसलिए उनकी कलचक्की में पिसाई को बुरा न माना। भैंसे-बकरे हमने तो नहीं काटे, इसलिए चमड़े का आयात-निर्यात बेझिझक स्वीकार किया। अंडा खाना और शराब पीना तो आम हो गया है। मैं पूछूंगा, तुम जब चींटी को बचाना चाहते हो, तो अपने को मारने पर क्यों तुले हो? चींटी को नुकसान पहुँचाना अहिंसा का उल्लंघन है, तो अपने को नुकसान पहुँचाना अणुव्रतों का अतिक्रमण नहीं है? तुम सिगरेट तम्बाकू खा-पीकर अपनी ही धमनियों में जहर भर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहे हो। यह आत्मघात है। अखबारों में रोज छप रहा है 'वैधानिक चेतावनी : सिगरेट पीना, तम्बाकु खाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।' पढ़कर भी अनपढ़ बने हैं। कहीं यह अंधे को दीप-दान तो नहीं हो रहा है?

लोग ऐसे काम कर जाते हैं जिससे जीवन का अपघात होता है, जीवन के मूल्यों का 'अवमूल्यन' होता है। जीवन का मूल्य कोई समझे तब न! बदी की आदत नसों में खून की तरह समा गयी है। एक बात तो आम हो चुकी है : आदमी कितना भी गलत से गलत काम कर ले, लेकिन समाज के बीच बैठकर दो-पांच लाख का दान कर डाले, समाज द्वारा अभिनन्दन, फूलमालाएं, प्रशस्ति-पत्र तैयार! तस्करों और रिश्वतखोरों को भी!! मिलावटियों को भी!!!

आखिर मनुष्य की यह हालत कैसे हुई? मनुष्य का जीवन के प्रति इतना उदासीन और संत्रस्त-भाव आखिर क्यों हुआ? इसलिए कि हमने इस धरती का मूल्य कभी आंका ही नहीं। हमारे लिए सदा स्वर्गलोक मूल्यवान रहा, लेकिन यह धरती ही एक स्वर्ग बने, ऐसा प्रयास कब, कहाँ हुआ? मनुष्य को ईश्वर-पुजारी कम, ईश्वर-भीरू अधिक बनाया गया। उसे पुण्य करने की बात कही, ताकि उसका परलोक सुधरे। यानि हमारी नैतिकता, उपासना का फल मृत्यु के बाद! जीवन में कुछ नहीं? दृष्टिगत हो रही धरती पर कुछ नहीं?

जीवन के प्रति आदर-भाव आए, तो धरती और धरतीवासियों के निःश्रेयस् के भाव स्वतः स्फुरित हों। जो बात, एक युग में मान ली गई, उसे हर युग में दोहराने और बनाये रखने का दुराग्रह हम इस कदर करते गये कि जिन युगों को हमने जीकर छोड़ दिया, उन्हें धर्म और सिद्धांतों के रूप में सदा कहने-करवाने का प्रयास किया। युग प्रगति करते गए, पर वे पुरानी बातें धर्म के नाम पर ज्यों की त्यों ओढ़ाई जाती रहीं। नतीजा यह निकला कि धर्म केवल उपदेश बन गया। धर्म-प्रवर्तकों को, तिथि-त्यौहारों को याद कर लिया जाता है। पर वस्तुतः समाज धर्म से इतनी दूर चला गया है कि उसके चिन्तन में, उसके कृत्यों में, जीवन में, धर्म की कोई झलक नहीं मिलती।

धरती पर धर्मों की कमी नहीं है। अगर कमी है तो धार्मिक चेतना की। मनुष्य के हाथ में धर्म नहीं, वरन् धर्म का ऊपरी कलेवर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रह गया है। मशाल की आग बुझ गई, अब सिर्फ डंडे और हथकंडे रह गये हैं। धर्म-विस्तार के नाम पर अगर कुछ हो रहा है तो सिर्फ नारेबाजी हो रही है, पोस्टर-पिलर लग रहे हैं, बैंड-बेनर का हो-हल्ला हो रहा है। आत्म-जागरण और जीवन-रूपांतरण की चेतना न जाने किस कथरी को ओढ़े कोने में दुबकी बैठी है।

धर्म-चेतना पर जोर दिया जाना चाहिये। धर्म के विस्तार में नहीं वरन् धर्म की गहराई में दिलचस्पी होनी चाहिये। धर्म का सार निष्काम-सेवा है। अध्यात्म की सार्थकता निस्पृह-भावना में है। 'परोपकारः पुण्याय, पापाय पर-पीडनम्' परोपकार को, समाज-सेवा को पुण्य मानो और पर-पीड़ा, पर-अहित को पाप समझो। यह होगा तभी, जब हमारी दृष्टि में जीवन का मूल्यांकन होगा। मूल्य-स्वीकृति के अभाव में स्व-पर का, कथनी-करनी का, सिद्धांत-व्यवहार का दुराव बना रहेगा।

जीवन के प्रति सम्मान और ईमानदारी का भाव न होने के कारण हम कहने-करने के बीच सदा फासला रखते आये। कहना कुछ और करना कुछ - यह दोहरी और दोगली नीति आज देश के किस हिस्से में गूंथी हुई नहीं है? 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की बातें तो सदियों पहले उन किताबों में कह दी गयीं जिनकी चौपाइयों को हम हर धर्मकांड में बोलते-दोहराते हैं। रही सही कसर उन लोगों ने पूरी कर डाली, जो समाज और साम्राज्य का नेतृत्व करते हैं। किसी से पूछो राजनेता के लक्षण क्या हैं? तो सीधा-सा जवाब होगा जो अपना उल्लू सीधा करे। नेता के मानो तीन ही काम बाकी बचे हैं - चाटन-भाषण-उद्घाटन। मन में आए सो बोलो, करना-धरना तो कुछ है नहीं, मंसूबे करने और अधरों के आश्वासन देने में कौन से पैसे लगते हैं! 'वचने का दरिद्रता!' बोलने में कैसी कंजूसी! सबके भाषण, भाषण भर रह गये हैं। 'बिल्ली सौ-सौ चूहे खाकर हज करने को चली'।

चाटन, भाषण, उद्घाटन! चाटन की आदत तो आम आदमी में पैठ गई है। जब तक स्वधर्मी वात्सल्य/जीमनवारी की खबर न फैलाओ, तुम्हारे बड़े-से-बड़े कार्यक्रम 'फ्लॉप' जाएंगे, कई बार तो सुपर फ्लॉप। संतों के प्रवचन के बाद सिक्के और लड्डू बांटने ने तो ऐसे हालात कर डाले हैं कि जैसे ब्याह की घोड़ी के आगे नाचो, तो वह दो कदम चले, नहीं तो चौराहे पर अपनी बेइज्जती करवा बैठो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्माचरण का एक प्रचलित रूप है - व्रत-उपवास। बड़ा अच्छा शब्द है यह! धर्म का अद्‌भुत अवदान। पर तुमने कभी किसी को व्रत करते देखा है? एकादशी को द्वादशी की दादी बना देंगे। उपवास आहार की आसक्ति मिटाने के लिए है, पर चाटन ने उपवास का हुलिया ही बदल डाला है। उपवास तो बाद में होगा, उससे पहले पारणा, उत्तर पारणा। यानी डटकर खाएंगे, बदाम-पिस्ता पीस-पीसकर, क्योंकि कल तो उपवास है। फिर उपवास हो गया, तो पारणा! दूध और उसमें कटे बदाम, ऊपर से घी, क्योंकि कल उपवास था।

चाटन, भाषण के बाद उद्‌घाटन! पहले तो ये लत नेताओं में ही थी, अब तो जिसे देखो वही उद्‌घाटन के लिए मोहताज है। उद्‌घाटन करके नाम कमाने की प्रतिष्ठा ने मानव-समाज की दुर्दशा कर डाली है। कल ही एक समाचार पढ़ा कि अमुक नगर के 'सी' वार्ड में बने सार्वजनिक शौचालय का कल उद्‌घाटन है, उद्‌घाटन पर अमुक सांसद आ रहे हैं। भवनों का उदघाटन तो फीता काटकर किया जाता है, पर शौचालयों का.....! देश की राजधानी में तो आपको यह मुखड़े-मुखड़े पर सुनने को मिल जाएगा- तुम जिस हस्ती को बुलाना चाहते हो, वह तो पान की दुकान का उद्‌घाटन करना हो, तो भी पहुंच जाएगा।

आखिर इन तौर-तरीकों से नैतिकता के कौन से मूल्य स्थापित या पुनर्स्थापित करने का प्रयास हो रहा है। हमारी वाणी और व्यवहार में आई दूरी को मापने के कौन-से फीते हैं? विदेशों में हमारी इज़्ज़त इतनी सी है कि किसी दुकान पर जाओ, तो दुकानदार चौकन्ना हो उठेगा। वह नौकर को इशारा करेगा- 'ध्यान से, इंडियन है' और देश में, कोई विदेशी आ गया तो पर्यटक-मेहमान का भाव किसमें है, जिसे देखो वह गोरी चमड़ी और पैसे पर टूट रहा है। हमें पैसा चाहिये, फिर वह चाहे जिस तरीके से आये।

माना कि विदेशी ऐश-ओ-आराम, मौज-मस्ती में पैसा खर्च करता है, मगर वह कम से कम उपयोग तो करता है। हम न उपयोग करते हैं, न दुरुपयोग। हम सिर्फ जमा करते हैं। यह संग्रह और परिग्रह है। उपयोग करना परिग्रह नहीं है, इकट्ठा करना परिग्रह है। अगर प्राचीन ग्रन्थ कहते हैं कि परिग्रह पाप है, तो .....! विश्व के ग्लोब पर खड़े होकर अपरिग्रह की तूती बजाने वाले, परिग्रह के भार से दबे जा रहे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। बटोरता-टुकुरता आदमी मर जाता है, उस बटोरे हुए की रक्षा के लिए वे ही लोग चूहे, नेवले, सांप के रूप में पुनर्जन्म ले कर जमीन में गड़ाए धन पर अपनी पूंछ के बल बैठे रहते हैं -

धन धरती में गाड़े बौरे,
धूरि आप मुख लावै।
मूषक सांप होवेगा आखिर,
तातै अलच्छि कहावै।

हम सिद्धांत और व्यवहार के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करें। हमारा जीवन एक अलग ढर्रे पर चल रहा हो और हम कोरे सिद्धान्तों की दुहाई देते फिरें, तो ऐसे सिद्धान्तों का क्या औचित्य? शास्त्र कहेंगे रात को मत खाओ, जबकि शास्त्रों के नब्बे फीसदी अनुयायी रात को ही खा रहे हैं। नारी उद्धार की बातें करेंगे, पर अपने घर की बहू को घूंघट की चारदीवारी से बाहर आने पर सख्त पाबंदी लगाएंगे। समारोहों में बड़े-बड़े नेताओं और विद्वानों द्वारा छुआछूत और ऊंच-नीच के भेदभाव को मिटाने हेतु भाषण दिलवाएंगे, पर हकीकत में ओसवाल-अग्रवाल, दस्सा-बीसा, सवर्ण-हरिजन की खाइयों को और गहराने का प्रयास करेंगे। भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के प्रयासों से यज्ञ में होने वाली हिंसा पर तो रोकथाम हुई, पर परिग्रह-बुद्धि के चलते शोषण की हिंसा तो जारी ही है। अपरिग्रह के सिद्धांत से प्रेरणा लेकर लोगों ने धन और सुखों का कौनसा संविभाग किया? अपरिग्रह के नाम पर अपरिग्रह का मात्र कर्म-कांड ही चल रहा है। लोग अहिंसा और अपरिग्रह के नाम पर नंगे पांव घूम रहे हैं, मुंह पर कपड़ा बांध रहे हैं पर पैसों का परिग्रह, एक-दूसरे को अपने से पीछे धकेलने के प्रयास और विचारों में निरन्तर आयी गिरावट हमारे अपरिग्रह और अहिंसा के सिद्धांतों के आचरण पर प्रश्न-चिह्न लगा रहे हैं।

लगता है, जैसे सेवा और प्रेम को, दया और करुणा को, ध्यान और योग को, शाकाहार और पर्यावरण को हम विदेशों को निर्यात कर रहे हैं, जो कभी हमारे ही देश के मूलभूत उत्पादन रहे हैं। लेकिन बदले में विदेशों से हमने आयात क्या किया? अंडे और मछलियां, शराब और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शृंगार, हिंसा और आतंक .....! बेहतर होगा हम अपने जीवन में आये स्खलनों की शल्य-चिकित्सा करें। भीतर का मवाद बरकरार रहा, चीरा लगाने से परहेज रखते गये तो जीवन स्वयं विभूति बनने की बजाय नरक की तरह दुःखदायी और भारभूत ही रहेगा।

तीसरी बात, हम महज बाहर ही जीते हैं। हमारा स्नान, उपार्जन, चिकित्सा, सब बाह्य जीवन से जुड़े हैं। हमने जीवन के दो रूप कर डाले- बाहरी और भीतरी। एक घरवाली और एक बाहर वाली। पैंसिल गुम होने पर मां ने पूछा - क्या ढूंढ रहे हो। बेटे ने कहा, घरवाली!

हमने मनस् चिकित्सा पर ध्यान नहीं दिया, जिससे जीवन की मूल समस्याएं हल हों। मन में हो कचरा, तो रामायण का किया गया पारायण मात्र गोबर की भीत पर वेलवेट चढ़ाने के बराबर कहलाएगा। हृदय की स्वच्छता पर ध्यान नहीं है। शिक्षा-दीक्षा का पहला पाठ भीतर की पवित्रता का होना चाहिये।

मनुष्य की जीवन-शिक्षा की शुरुआत स्वयं मनुष्य से हो, मनुष्य के जीवन से हो, जीवन को सृजनात्मक, रचनात्मक बनाने पर केन्द्रित हो। मैं परमात्मा को जीता हूँ। परमात्मा मुझमें जीता है। धरती पर जीता मनुष्य परमात्मा का खड़ा मंदिर है। प्राणी-जीवन परमात्मा का निवास-स्थान है। मैंने इंसान ही क्यों, फूलों और पहाड़ों में भी उसके ऐश्वर्य का आकाश भर आनन्द उठाया है। मुझे सबसे प्रेम है। सर्वत्र परमात्म-दर्शन है, बालक में भी। मेरा अहोभाव जीवन के प्रति है। जीवन है तो सब है, जीवन नहीं तो कोई अर्थ नहीं। फिर तो सिर्फ अर्थी है, जनाजा है।

हर व्यक्ति को ईश्वर में आस्था रखनी चाहिए। ईश्वर आकाश में नहीं, जीवन में है, हर प्राणी में है। मनुष्य के लिए हर प्राणी का मूल्य है, पर मनुष्य, धरती का सर्वोपरि मूल्य है। मनुष्य के मंदिर खंडहर नहीं होने चाहिये। नर रहेगा, तो नारायण रहेगा। इन्सान मिटता गया, गिरता गया, तो मनुष्य की नृशंसता के कारण धरती को चौपट होने से कोई रोक नहीं सकता।

धरती पर तनाव और संत्रास न हो, इसके लिए पहला सूत्र है जीवन का सम्मान, जीवन के प्रति अहोभाव। जीवन को स्वर्ग बनाएं। यों 'स्वर्गवासी' होना तो 'मृत्यु के कारण' मनुष्य की मजबूरी है। स्वर्ग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो यहीं- जीवन की प्रमुदितता और पुलकितता में। मनुष्य का जगत् केवल परिवार-मोहल्ले तक सीमित नहीं है। जीवन का जगत् और जगत् का जीवन विराट है। संकुचितताएं त्यागें, विराट के आलिंगन के लिए बांहें फैलाएं, मानवता को गले लगाएं। यही मनुष्य के हाथों मनुष्यता का, जीवन का सम्मान है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चेतना का रूपान्तरण

माटी ही फूल बनती है और गंदगी ही खाद बनकर सुगंध बन जाती है। जिस माटी को हम व्यर्थ और अर्थहीन समझते हैं, उस माटी में फूल खिलाने और उसे सुवासित बनाने की महान संभावनाएं हैं। जिसे हम गंदगी समझते हैं, वह अगर बीज को मिल जाए तो, उसी गंदगी से सुगंध पैदा हो सकती है। वस्तु के रूपान्तरण की कला आ जाए, मार्ग परिवर्तन करने की सूझ आ जाए तो इस धरती पर न तो कोई माटी है और न ही कोई गंदगी है। हर दुर्गन्ध सुगन्ध की भूमिका है और हर माटी फूल का प्रजनन-स्थल है।

जीवन न तो व्यर्थ होता है और न ही सार्थक। ऐसा नहीं कि जीवन का कोई अर्थ नहीं है; और कोई अर्थ है। जीवन कोई रेडीमेड कपड़े की दुकान नहीं है कि कपड़े खरीदने गए, पसंद किया और ले आए। जीवन के अर्थ तो खोजने पड़ते हैं। जीवन तो आकाश की तरह, कोरा कागज जैसा है।

जीवन के कोरे कागज पर हम जो चित्र चाहें चित्रित कर सकते हैं। इस पर यदि हम इन्द्र-धनुष बनाना चाहें, तो बना सकते हैं और इसी कागज पर कीचड़ उछालना चाहें, तो कीचड़ भी उछाला जा सकता है। किसी कागज पर, आकाश पर यदि इन्द्रधनुष बनाया जा रहा है तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसमें उस कागज या आकाश की कोई विशेषता नहीं है, विशेषता तो चित्र बनाने वाले की है। भाषा की वर्णमाला की तरह है हमारा जीवन। इस वर्णमाला से गालियां भी पैदा हो सकती हैं और गीत भी। जरा गौर कीजिये-'अ' से अश्लील भी होता है और अरिहंत भी। 'ब' से बलात्कार भी बनता है और ब्रह्मचर्य भी। 'स' से सत्यानाश और सत्य दोनों बनते हैं। वर्णमाला तो वही है, फर्क यह है कि हम उसका उपयोग कैसे करते हैं। हम गाली पैदा करते हैं या गीत, यह तो जीवन जीने वाले के ऊपर है। इसलिए जीवन न तो व्यर्थ है और न ही सार्थक। व्यर्थ करना चाहो तो व्यर्थ और सार्थक बनाना चाहो तो सार्थक, तुम्हारे ही हाथ में है।

हमारी दृष्टि में यदि दुःख ही बसा है तो हमें चारों ओर दुःख ही नजर आएगा और जीवन महान दुःख हो जाएगा। यदि आनन्द हमारा स्वभाव बन चुका है तो जीवन से बढ़कर दूसरा कोई आनन्द ही नहीं है। जीवन को कमल के पत्ते पर गिरी बूंद समझो तो क्षणभंगुर, और निरन्तरता की जीवन्त दृष्टि से देखो तो यह शाश्वत है।

शास्त्र, पिटक और उपनिषद कहते हैं कि जीवन क्षण-भंगुर है। लेकिन वास्तव में जीवन क्षण-भंगुर नहीं है, क्षण-भंगुर तो मृत्यु है। जीवन तो पूरा जीना पड़ता है जबकि मौत क्षण भर में आ जाती है। कोई कहता है कि जीवन जीना पड़ेगा। जहां 'पड़ेगा' की मजबूरी हो, वहाँ आनन्द नहीं। वास्तव में जीना तो वह है जिसमें भरपूर आनंद और उत्सव के साथ जीवन को जिया जाए। अगर व्यक्ति को जीने का आनन्द नहीं मिल रहा, उसके जीने का कोई अर्थ ही नहीं है, तो निश्चित मानिये, उसने चश्मा ही गलत नम्बर का पहन रखा है।

एक व्यक्ति ने अदालत में तलाक के लिए अर्जी पेश की। न्यायाधीश ने अर्जी पढ़ी तो हैरान रह गए। उस व्यक्ति की शादी सात दिन पूर्व ही हुई थी। पत्नी को देखा तो वह भी खूबसूरत थी। तो क्या कारण है कि पति महोदय तलाक लेना चाहते हैं। न्यायाधीश ने युवक से पूछा तो वह बोला-'बात कुछ नहीं है, लेकिन मैंने शादी के समय गलत नम्बर का चश्मा पहना हुआ था। अब सही नम्बर का चश्मा लग गया है, इसलिए अब सब कुछ सही दिखाई दे रहा है।'

हमने जीवन जीने के चश्मे गलत नम्बर के लगा रखे हैं तो हमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई भी चीज सही नजर नहीं आएगी। कोई मोटी, तो कोई छोटी और कोई बेडौल नजर आएगी। कोई नश्वर तो कोई अर्थहीन नजर आएगी। चश्मा सही लग जाए तो जीवन में अर्थ आ सकता है, माटी से फूल खिल सकते हैं, गंदगी खाद बनकर सुगंध सुवासित कर सकती है। सच्चाई तो यह है कि सुगंध गंदगी से ही आती है। उसका मूल वहीं है। फूल का मूल बीज में है, माटी में है। फूल माटी में ही खिल सकते हैं। बस, जीवन को निखारने की कला आनी चाहिए। होगा किसी के लिए धर्म का अर्थ पूजा-पाठ। असल में तो धर्म का अर्थ है - जीवन को निखारने और जीने की कला; जीवन के मूल्यों को उपलब्ध करने की कला; जीवन के रूपान्तरण की कला।

आप बांस के जंगलों में जाएं और नजर दौड़ाएं, तो बांस की जिस पुंगरी को हम नजर-अंदाज कर देते हैं, उसमें संगीत की अपरिमित संभावनाएं हैं। उस पुंगरी से वह संगीत निकल सकता है जो आपको मद-मस्त कर दे। इसी तरह जो जीवन आपको अभी क्षण-भंगुर नजर आ रहा है, अर्थहीन लग रहा है, उसमें से संगीत की लहरियां निकल सकती हैं। जीवन में दिव्यता आ सकती है।

व्यक्ति के सामने दो ही विकल्प हैं या तो वह पशु बने या प्रभु। अगर मनुष्य का अन्तस् विकृत हो गया तो वह पशु हो जाएगा और उसका पशु मर गया तो वह प्रभु हो जाएगा। जिस मनुष्य का पशु मर जाए, संस्कारित हो जाए, तो उसका प्रभु होना निश्चित है। धरती पर हर कोई प्रभु होने की यात्रा पर है। प्रभु और कोई नहीं, मनुष्य ही होगा, प्राणी ही तो होगा।

परमात्मा होने का अर्थ यदि आप यह लगाते हों कि परमात्मा बनने पर देवता आरती उतारने आएंगे तो बात दूसरी है। मनुष्य में आत्मा है और यह आत्मा ही तो 'परम' आत्मा बनेगी। जब तक पृथ्वी पर मनुष्य रहेगा, परमात्मा बनने की संभावनाएं भी जीवित रहेंगी। जब कोई व्यक्ति अपने पूर्ण स्वभाव को उपलब्ध होगा, अपनी परिपूर्णता को उपलब्ध होगा, अपनी आत्मा की प्यास को परिपूर्ण कर लेगा, तब-तब उसके द्वार पर परमात्मा की दस्तक अनिवार्य रूप से होगी।

मनुष्य पशु भी हो सकता है और प्रभु भी। सबसे पहले तो मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य ही बन जाए यही बहुत बड़ी बात होगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हम अपने भीतर झांकें और मन की पड़ताल करें, तो पाएंगे कि अभी तो मनुष्य को मनुष्य बनने के लिए भी काफी लम्बा सफर तय करना पड़ेगा। दुनिया भर के धर्मों का एक ही लक्ष्य है कि किस प्रकार मनुष्य को मनुष्य बनाया जाए। मनुष्य अभी तक सिर्फ बाहर से ही मनुष्य है भीतर से, मन से उसे मनुष्य बनना शेष है।

इस दुनिया में जितने धर्म हैं, उनका जन्म मनुष्य के लिए हुआ है, मनुष्य का जन्म धर्म के लिए नहीं हुआ है। सिद्धांतों को मनुष्य के लिए बनाया जाता है, मनुष्य कभी सिद्धांत के लिए नहीं बनता। मनुष्य तो बदलता रहता है, हर पल बदलता रहता है। हजारों वर्ष की बात तो छोड़ दीजिये, पचास वर्ष पहले और आज के मनुष्य में भी कितना फर्क आ गया है। हर रोज परिवर्तन आ रहा है।

हमारी विडम्बना यह है कि हम सिद्धांत तो सदियों पुराने पढ़ेंगे लेकिन जियेंगे आज के मुताबिक। सिद्धांत कुछ और कहते रहें और जीवन और ढंग से जीते रहें तो यह सिद्धांत और जीवन के बीच घोर विरोधाभास नहीं तो और क्या है? अपने धर्मशास्त्र कहते हैं कि रात को भोजन नहीं करना चाहिये। यह सिद्धांत पच्चीस सौ साल पहले बनाया गया था। जिस सिद्धांत की हम दुहाई देते हैं, उसके सारे अनुयायी रात्रि में भोजन करते हैं तो यह सिद्धांत का मखौल नहीं तो और क्या है? या तो हम सिद्धांतों के मुताबिक अपना जीवन बनाएं या फिर जीवन के मुताबिक सिद्धांत बनाएं। एक रास्ता तो निकालना ही होगा।

हम यज्ञ की हिंसा का विरोध करेंगे, किन्तु शोषण की हिंसा जारी रखेंगे। अपरिग्रह के नाम पर नंगे पांव चलेंगे, अहिंसा के नाम पर मुंह पर कपड़े बांधेंगे, पर संपत्ति का संग्रह और परिग्रह उद्दाम रीति से जारी रखेंगे। अचौर्य-अस्तेय के नारे लगाएंगे और टैक्स की चोरियां करते फिरेंगे। जैसे कर-चोरी कोई चोरी ही नहीं है। उपवास का आयोजन करके अनाज की बचत करेंगे, वहीं जीमनवारी/स्वामी वात्सल्य के नाम पर बचत के भंडार लुटा देंगे। इसी स्वामी वात्सल्य में कोई गरीब/भिखारी आकर भोजन करने लगे, तो उसे दुत्कार कर भगा देंगे, अपमानित करेंगे। अब जो अपरिग्रह बचा है, वह अपरिग्रह के नाम पर महज अपरिग्रह का दिखावा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माटी का भगवान् बनाना हो, उसे देवालय में बैठाना हो, तो लाखों-करोड़ों का चढ़ावा बोल देंगें, पर जीवित भगवान बनाना हो तो? जीवित भगवान् बनाने के प्रति कहाँ जागरूकता है? रंगीन पत्रिकाओं को छपाने में अनाप-शनाप खर्च हो रहा है, सृजन का रूप दिखाई नहीं देता। अपरिग्रह, मुनि लोगों का तो प्रमुख व्रत है। एक दृष्टि से तो ब्रह्मचर्य से भी ज्यादा प्राथमिक। पर ऐसा कौन-सा संत है जिसका पैसे से संबंध न हो! संभव है, कायिक संबंध न हो, पर मानसिक और वाचिक तो है ही। अपने पास न रखा, तो क्या हुआ, औरों के पास रखवाया सही।

अपरिग्रहियों के परिग्रह को कभी देखा? जो जितना नामजद, जिसके जितने भक्त, जितना संपर्क, उसके परिग्रह का उतना ही विस्तार।

कल एक सज्जन कह रहे थे मंदिर में पैसा चढ़ाओ, उससे तो अच्छा है कि गरीबों को दो। तुम जो कहो, तुम्हारी मौज, पर तुम गरीबों की भी सेवा कहाँ करते हो। मंदिर में चढ़ाने से तो तुम बच जाते हो, पर गरीबों को भी नहीं दे पाते। मूर्ति के अभिषेक को तो तुमने पत्थर पर पानी डालना बता दिया। कहने लगे, 'पाहन पूजे हरि मिलैं तो मैं पूजूं पहाड़।' पर मैं पूछूंगा तुम कितनी बार झुग्गी-झोपड़ी में गये। किसी मैले-कुचैले लड़के को पाट पर बिठाया, उसे अपने हाथों से नहलाया। उसे नये कपड़े पहनाकर उसकी आंगी की? तुम करते-धरते कुछ नहीं, बस बचने के रास्ते भर निकाल लेते हो। चाहे तुम मूर्ति में भगवान मानो या मूर्ति के बाहर पर कृपा कर उसे फुटबॉल की गेंद मत बनाओ। जो मानना है, उसे दृढ़ता से मानो और जो माना है, उसे दृढ़ता से करो। बगैर क्रियान्वित हुए तो तुम मार्गी नहीं, उन्मार्गी ही हुए। रास्ते तो बहुतेरे हैं, पर चलो तो सही।

बातों के बादशाह करने के नाम पर कंगले होते हैं। यह गज़ब विरोधाभास है। गंदगी ऐसे तो सुगंध नहीं बन सकती। इन तरीकों से, मापदंडों से तो कतई नहीं। जिस ढंग से हम जीते चले जा रहे हैं, उससे तो माटी फूल नहीं खिलाएगी। हमने अपने जीवन को चलाने के जो प्रतिमान बना लिए हैं या जिनकी हम दुहाई देते हैं, उनसे तो बांस की पुंगरी स्वर-लहरियां नहीं बिखेरेंगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य को जीने की कला आनी चाहिए। जिसे जीने की कला आ गई, समझो, उसने धर्म को आत्मसात कर लिया। धर्म उसे और वह धर्म को उपलब्ध हो गया। जो व्यक्ति विचारों से जितना महान होगा,उसका व्यक्तित्व भी उतना ही महान होगा। जिन बातों से हमारे विचार आंदोलित होते हैं, वे ही हमारा व्यक्तित्व बनाते हैं। असल में हमारे विचार ही तो हमारा व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व विचारों का प्रतिबिम्ब है। विचारों को हम नजर अंदाज नहीं कर सकते। विचार व्यवहार की पृष्ठभूमि है।

व्यक्ति के विचार उसके जीने के तरीके को प्रभावित करते हैं। न जाने हमने कैसा चश्मा पहन रखा है कि हमारे लिये जीवन का कोई अर्थ निकलकर ही नहीं आता। कोई आनन्द या उत्सव नहीं बनता। अगर जीवन आनंद और उत्सव बन जाए, स्वयं अनुष्ठान हो जाए, जीवन के प्रति मन में आदर-भाव हो जाए, तो आप तपस्वी हो जाएं। पंच कल्याणक पूजा करवाकर पता नहीं किसी का कल्याण होता है या नहीं लेकिन आप पुलक-भाव में जीने लगें तो आपका कल्याण अवश्य हो जाए।

किसी ने मुझसे कहा कि चातुर्मास में 'चरित्र' का वाचन होता है, आप भी 'चरित्र' क्यों नहीं पढ़ते? मैं मुस्कुराया क्योंकि केवल चरित्र पढ़कर या सुनकर आज तक कोई चरित्रवान नहीं बन सका। अब तक न जाने कितने-कितने चरित्र पढ़े गए, कितनों के जीवन में चरित्र देखने को मिला? चरित्र पढ़ने से चारित्र्य नहीं आ जाता, उसे तो जीवन में लाना पड़ता है।

ज्ञान कभी पैसे खर्च करने से नहीं आता। वह तो अर्जन से, स्वानुभव से आता है। एक बार नहीं, बार-बार सौ-सौ रुपए के नोट किताबों पर चढ़ाते जाओगे तो भी ज्ञान नहीं आएगा। सौ-सौ के नोटों के पीछे आपकी प्रतिष्ठा जरूर हो जाएगी, लेकिन ज्ञान नहीं आएगा। बेहतर तो यह होगा कि 'ज्ञान-पूजा' करने वाले प्रतिदिन घर में बैठकर स्वाध्याय का संकल्प लें। ऐसा होगा तो आपका दस मिनट का स्वाध्याय सौ का नोट चढ़ाने से अधिक महत्वपूर्ण हो जाएगा। स्वयं अपने भीतर चारित्र्य का मनन करो। अपने दुष्चरित्र को सच्चरित्र में बदलने का प्रयास करो तो शायद वास्तव में तुम्हारा 'चारित्र्य' बन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सकेगा। चारित्र्य की पूजा करने की बजाय, उसे स्वीकार करो। इसीलिए कहता हूं कि अगर जीने की कला आ जाए तो माटी फूल बन सकती है और गंदगी सुगंध बन सकती है।

व्यक्ति हमेशा वैसे ही कृत्य करता है, जैसे विचार होते हैं। कोई व्यक्ति क्रोध करता है तो इसमें उसका दोष नहीं है, उसके भीतर क्रोध ही भरा है। वह गालियां देता है, इसका मतलब है, उसके भीतर गालियां भरी हैं। जिसके पास जो चीज होगी, वह वही तो देगा। भीतर की गंदगी ही तो बाहर आती है। आपने शराबी को देखा तो है; शराब पीने के बाद उसे मां भी मां नजर नहीं आती। जब वह बोलने लगेगा तो आप देखेंगे कि इतना भला आदमी नजर आ रहा था, लेकिन भीतर तो कचरा भरा पड़ा है। शराब व्यक्ति के असली छुपे चरित्र को अभिव्यक्ति देती है।

आदमी प्रायः दोहरा जीवन जीता है। भीतर कुछ और बाहर कुछ। यह बात हर आदमी जानता है कि उससे मिलने आने वाले के मन में वास्तव में क्या है। ऊपर से तो वह आपके चरणों में धोक लगा रहा है, मगर भीतर ही भीतर गालियां दे रहा है। ऊपर से ही प्रणाम हैं, अंतर्आत्मा में गालियां ही हैं।

कृपा कर औरों में कमियां मत ढूंढो। उसकी कमियां उसको मुबारक। तुमने दूसरे में कमियां तफ्तीश की, यानि तुममें कमी है। तुम्हारे स्वभाव में यह कमी है कि तुम औरों में कमियां ढूंढते हो। इन काले चश्मों को पहनने की आदत छोड़ो। काले चश्मों को पहनकर तो तुम हंस को भी कौए की ही नस्ल का समझ बैठोगे। गुणवान् बनो। गुणों पर केन्द्रित होओ। गुणात्मक दृष्टि रखो। आप किसी व्यक्ति में विशेषताएं ढूंढने का प्रयास करेंगे तो आपको विशेषताएं ही विशेषताएं नजर आएंगी और आप कमियां ढूंढने लगेंगे तो वही व्यक्ति कमियों का भंडार नजर आएगा। मेरे पास धर्म और अध्यात्म की खोज में आओगे तो तुम्हें यहां अध्यात्म की अनूठी आभा दिखाई देगी, यदि संसार को ढूंढोगे तो एक भरा-पूरा संसार दिखाई देगा। जिसका निवास भीतर के आकाश में हो, जो मौन की सत्ता में जीता हो, उसकी एक मुस्कान से चांद खिल उठता है, दूसरी से सूरज और तीसरी से धरती के फूल। अगर इस रहस्य को न समझ पाये, तो तुम्हें अहोभाव जनित मुस्कान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का पता न चलेगा। सब हम पर ही निर्भर करता है। आप किस दृष्टिकोण से आ रहे हैं, इस पर निर्भर करता है। कचरे की तलाश में आओगे तो ऐसा बहुत-सा कचरा है जो वापसी में आपके साथ जाएगा। अगर कुछ ग्रहण करने को गमला लेकर आए हो तो सुगंधित होकर जाओगे। फूलों से अभिषिक्त होकर।

प्रसन्न हृदय से धरती को देखो, तो धरती जैसा स्वर्ग कहीं नहीं मिलेगा। विपन्न-विक्षिप्त चित्त से नजर मुहैया करो, यहां सिवा नरक के तुम्हें और कुछ दिखाई ही नहीं देगा। नजरों को सुधारो। काले चश्मे से हर दीवार काली ही नजर आएगी। भीतर अशुद्धि है, तो तुम्हें शुद्ध/शुभ कैसे दिखाई देगा।

कहते हैं : एक बिच्छु ने अपने मित्र केकड़े से कहा, मुझे नदी की सैर करवा दो। केकड़े ने कहा, तुम ठहरे बिच्छु, कहीं काट खाया तो! बिच्छु हंसा, कहने लगा 'भले मानुष! जरा सोच तो सही, अगर मैंने तुम्हें डंक मारा, तू डूबेगा-मरेगा, तेरे साथ मैं भी तो डूबूंगा-मरूंगा।' केकड़े को बिच्छु का तर्क समझ आ गया। उसने कहा तब ठीक है, मेरी पीठ पर बैठ जाओ।

केकड़ा बिच्छू को पीठ पर लिए चला जा रहा था। बीच तालाब में बिच्छू ने केकड़े की पीठ पर डंक मारा। केकड़े ने कहा-'भाई तुम्हारे तर्क का क्या हुआ?' बिच्छू ने उसे समझाया-'वह तो मेरा तर्क था, मगर डंक मारना तो मेरा स्वभाव है, मैं अपना स्वभाव कैसे छोड़ सकता हूं। वह बात किताबों की थी, यह हकीकत है'।

आदमी के भीतर भी जहर भरा है, वह कितने भी तर्क दे दे, गहरी से गहरी बात कर ले, अंत में तो जहर ही उगलेगा। बिच्छू के काटे का जहर उतारा जा सकता है, लेकिन आदमी का काटा तो पानी भी नहीं मांगता।

ऐसे लोगों के लिए कुछ रास्ते जरूर हैं, जो आदमी के काटे हुए हैं। आदमियों को तो आदमियों ने ही काटा है, उनके दुर्व्यवहार ने ही परास्त किया है। भीतर कचरा है तो बाहर भी कचरा ही आएगा। कोई आदमी शराब पीता है, इसलिए बेहोश है, ऐसा नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि आदमी बेहोश है, इसीलिए शराब पीता है। पीने के कारण मदहोशी नहीं आती, बल्कि मदहोशी है, इसलिए आदमी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पी रहा है।

ऐसा नहीं है कि आदमी मांसाहारी है इसलिए हिंसा करता है। वह हिंसक है, इसलिए मांसाहार करता है। मूल वृत्तियां तो भीतर हैं। जो भीतर जैसा होगा, वैसा ही उसका व्यवहार होगा। हमारा चारित्र्य वैसा ही होगा। अगर कोई खींचातानी हो जाती है तो आदमी दूसरों पर झल्लाता है, यही तो उसे परखने का अवसर होता है। जब आदमी क्रोध में हो, नशे में हो तो उसे पहचानने का उपयुक्त अवसर होता है। ऊपर-ऊपर से पहचानते रहे तो क्या होगा, बाहर से तो सब ठीक है। कोई व्यक्ति आपकी तारीफ करता है और आप उसकी तारीफ करते हैं, तब तक तो ठीक रहता है, लेकिन एक व्यक्ति बुराई करने लगे तो झगड़ा हो जाए। विपरीत वातावरण में ही तो समझा जा सकता है कि कौन, कितना धैर्य रख सकता है। जो बात-बात में धैर्य खो दे, माधुर्य खो दे, वह मानसिक रूप से दरिद्र है।

आदमी कैसा है, यह भीतर को समझने से पता चलेगा। इस भीतर को जानने के लिए महावीर ने मार्ग दिखाया - सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्ष-मार्गः। यह महावीर की क्रांतिकारी बात है। उनकी शुरुआत सम्यक् दर्शन से होती है। हमने तो महावीर के मार्ग को उलटा कर दिया है और उलटे मार्ग पर कोई नहीं चल सकता। कोई चलने का प्रयास भी करे तो मुंह की खाता है। हमारी यात्रा चरित्र से शुरू होती है, फिर ज्ञान अर्जित करते हैं और फिर सम्यक् दर्शन पर आते हैं। यह विपरीत मार्ग है। यह मार्ग तो वास्तव में मार्ग भी नहीं है। उलटे होने से व्यक्ति में वीतरागता नहीं रही।

वीतरागता और वैराग्य दो अलग-अलग बिन्दु हैं। वैराग्य तो राग के विपरीत होता है लेकिन वीतरागता का अर्थ होता है राग से मुक्ति। राग से ऊपर उठ जाना। वैरागी का प्रयास होता है कि वह सभी से संबंध तोड़ ले; लेकिन वीतरागी जोड़-तोड़ से ही मुक्त होता है। उसे तो हर किसी में आत्मा दिखाई देती है और आत्मा से आत्मा का संबंध होता है। अगर हमारा प्रेम किसी एक के प्रति सीमित हो जाए तो राग हो जाता है। समाज, सारे संसार के प्रति संबंध हो जाए तो वीतरागता कहलाएगी। विराट 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना साकार हो उठेगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीर ने बात कही - सम्यक् दर्शन की। पहले सही देखने की जरूरत है। जब तक व्यक्ति श्रावक नहीं बन सकेगा तो वह साधु कैसे बन पाएगा? कोई अगर सच्चा साधु नहीं है तो उसका एकमात्र कारण सम्यक् दर्शन का अभाव है। आजकल तो चारों ओर यही प्रयास हो रहे हैं कि साधु, सही साधु बने, लेकिन ये प्रयास नहीं होते कि श्रावक सही मायने में श्रावक बने। आखिर साधु भी तो श्रावक से ही आया है। पहला चरण ही कमजोर है तो दूसरा तो कमजोर होगा ही। इसलिए सही शुरुआत करो।

पहला कदम सम्यक् दर्शन - सही देखो, सुन्दर देखो। दूसरा - सही जानो, सुन्दर जानो और तीसरा कदम होना चाहिए - सही करो, सुन्दर करो। सही और सुंदर देखने और जानने के बाद करना ही सही प्रक्रिया है। यही सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र है। दर्शन यानी देखना, ज्ञान है जानना और चरित्र का अर्थ है देखे और जाने हुए को व्यवहार में लाना। हम लोग उलटे चलते हैं। हमारे लिए वेश का मूल्य हो गया है, जीवन का मूल्य नहीं रहा।

बाहर से साधु हो जाना साधुता नहीं है। हर व्यक्ति बाहर से साधु हो भी नहीं सकता। लेकिन हर आदमी भीतर से साधु जरूर बन सकता है। मेरा यही प्रयास है। मैं यह नहीं कहता कि झोली-डंडा लेकर इस मार्ग पर आओ। मैं तो कहूंगा कि अपने दिल को जितना अधिक साफ विचारों से भरोगे, उतना ही तुम्हारे लिए लाभदायी रहेगा। अपने हृदय को साधु बनाओ। बाहर से साधु बनो तो बलिहारी, लेकिन भीतर भी साधु बन गए तो समझो दीक्षा घटित हो गई। दीक्षा का अर्थ चार बाल नोंच लेना नहीं है। दिल बदला, दीक्षा घटित हो गई।

सम्राट अशोक कलिंग में युद्ध के बाद एक बौद्ध भिक्षु के पास गए। भिक्षु अशोक को वापस युद्ध के मैदान ले गया और वहां पड़ी लाशें दिखाईं। पूरा मैदान जैसे मरघट हो गया था। अशोक का हृदय ही परिवर्तित हो गया और वे दीक्षित हो गए। दिल बदला, इतना ही काफी है।

जयप्रकाश, विनोबा आदि की प्रेरणा से यदि डाकुओं का हृदय पिघलता है तो यह जीवन की एक प्रवज्या ही है। भीतर का कायाकल्प हुआ, माटी फूल और गंदगी सुगंध बन गई। मनुष्य का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कायाकल्प होना चाहिए। भीतर से बदलाव आया तो श्रद्धा पैदा होगी। किताबों को पढ़कर केवल विश्वास पैदा होता है। बाहर से बदले तो केवल पांवों में झुकोगे, भीतर से झुके तो जिन्दगी ही बदल जाएगी। हमारा प्रयास होना चाहिए कि कली फूल बने। फूल बनते ही वह परमात्मा हो गई। यह उसका परिपूर्ण होना हुआ।

मनुष्य या तो पशु बन सकता है या प्रभु। मनुष्य नीचे गिर गया तो पशु और ऊपर उठ गया तो प्रभु बन जाता है। गंदगी ही बने रहना है तो सुगंध कभी नहीं आएगी। इसे बदलोगे तो फूल खिल उठेंगे। परमात्मा बनना आसान है, अपने भीतर वह शक्ति पैदा करनी होगी, ताब लानी होगी। आप-हम-सब माटी से फूल खिलाने का प्रयत्न करें तो कुछ भी मुश्किल नहीं है।

आंगन को घेरे खड़ी दीवारों को गिराएं ताकि आंगन में आकाश उतरे। कांटों के पार झांकें ताकि कमल खिले। पर खोलें और भीतर के आकाश में छलांग भरें, उड़ान भरें। बदलें और जीवन के मार्ग पर बढ़ जाएं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोच हो ऊंचा

व्यक्ति अपने आपको जैसा बनाना चाहता है, वह वैसा ही बन जाता है। जो जिन विचारों से आंदोलित होता है, उसका व्यक्तित्व वैसा ही निर्मित होता चला जाता है। जिन विचारों से व्यक्ति प्रभावित होता है, उसका व्यक्तित्व भी वैसा ही प्रभावित होता है। विचार यदि मनुष्य के मन का अंकुरण है तो व्यक्तित्व इस बीज की फसल है। यदि कोई व्यक्ति क्रांतिकारी विचारों से प्रभावित होगा तो उसका व्यक्तित्व भी क्रांतिकारी हो जाएगा। यदि कोई भयभीत विचार और चित्त का स्वामी है तो शेर तो दूर, वह छिपकली को देख कर भी डर जाएगा। यदि किसी के चित्त में काम, क्रोध के संवेग हैं तो आदमी किताबों की दूकान पर उन पत्रिकाओं को पहले देखने का उपक्रम करेगा जिनका संबंध काम और सेक्स से होगा।

मन के कोषागार में व्यक्ति के विचार रहते हैं। यदि हम सौन्दर्य के बारे में निरंतर चिंतन करेंगे, हमारी चेतना निरंतर सौन्दर्य के बारे में सोचती रहे तो उसके भीतर एक-न-एक दिन सौन्दर्य उत्पन्न हो ही जाएगा। यह संभव ही नहीं है कि कोई व्यक्ति शिवत्व के बारे में चिंतन करता चला जाए और उसके जीवन में शिवत्व घटित न हो, शुभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से उसका साक्षात्कार न हो। सौन्दर्य के बारे में सोचोगे तो सौन्दर्य उत्पन्न होगा तथा शुभ के बारे में सोचोगे तो शुभ प्रकट होगा। सत्य के बारे में चिंतन करोगे तो सत्य को प्रकट होना ही पड़ेगा।

मनुष्य जैसा सोचेगा, उसका जीवन स्वतः ही वैसा होता चला जाएगा। व्यवहार में वही आता है, जैसा व्यक्ति सोचता है। यदि कोई व्यक्ति जाग्रत अवस्था में अपने व्यवहार में किसी विचार को अभिव्यक्त होने से बचा ले, तो सुषुप्तावस्था में उस विचार की अभिव्यक्ति अपने आप होगी। स्वप्नावस्था में उस चित्त की अभिव्यक्ति अपने आप होगी। बहुधा ऐसा होता है कि आदमी दिन में बड़ी बहादुरी की बात करता है, लेकिन रात्रि में चोर को देखते ही उसकी घिग्घी बंध जाती है, वह भयभीत हो जाता है।

प्रायः जो लोग क्षमा, प्रेम आदि के बारे में दुनिया के सामने जितनी गहरी अवधारणा प्रकट करते हैं, उनके भीतर उतनी गहरी अवधारणा होती नहीं है। मनुष्य की मुक्ति इसीलिए नहीं हो पा रही है क्योंकि मनुष्य दुनिया के सामने तो क्षमा, प्रेम, वात्सल्य आदि की अवधारणाएं रखता है, लेकिन भीतर क्रोध और घृणा भरी रहती है। आदमी अच्छे कपड़े पहनकर या फूलों की खुशबू से अपने भीतर की गंदगी को ढांप लेता है। भीतर पड़े कचरे को दूर करने का नहीं, वह उसे ढंकने का अधिक प्रयास करता है। कोई अच्छी बातें करके तो कोई अच्छे कपड़े पहनकर अपनी गंदगी को ढंक लेना चाहता है। अपने पर झूठा आवरण डालकर वह लोगों को धोखा देने में लगा रहता है। ऊपर से तो वह तिलक-छापा लगा लेता है, लेकिन उसके विचार तो उसके कलंक बन रहे हैं, कोढ़ का रोग बन चुके हैं।

आदमी कोढ़ को जितना छिपाना चाहेगा, उतना ही उसे नुकसान होगा। मवाद तो एक-न-एक दिन बाहर आएगा ही। व्यक्ति अपने विचारों के प्रति सतर्क और सावचेत हो जाए तो उसका कर्म, व्यवहार, कामकाज बहुत पवित्रतम और श्रेष्ठतम हो जाए। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो काम करने से पहले ही उस काम के बारे में सोच लेते हैं, ऐसे लोग बुद्धिमान हैं। जो काम करते समय सोचते हैं, सतर्क रहते हैं, वे समझदार हैं। काम करने के बाद जो सोचे, पछताये, वह मूर्ख है।

टक्कर लगी और स्याही की दवात फूट गई। अब चिल्लाने या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

डांटने से कोई फायदा नहीं। व्यक्ति संभला, लेकिन स्याही की दवात फूटने के बाद। घटना के बाद संभलो या न संभलो, कोई अर्थ नहीं रखता। रास्ते से गुजर रहे हो, गुजरते समय स्याही की दवात देख ली, उसे रास्ते से हटाकर ऊंची जगह पर रख दो, तो समझदारी हुई। लेकिन जो लोग पहले से ही सावचेत हैं, वे स्याही की दवात को बीच रास्ते में रखते ही नहीं। ऐसे लोग बुद्धिमान हैं, प्रज्ञावान हैं। उनमें कोई मनीषा है। वे खुद कुछ-न-कुछ कर गुजरते हैं।

मेरे सम्बोधन समझदार लोगों के लिए हैं, प्रज्ञावान तो अपने आप में संबुद्ध है, संभला हुआ है। मेरा आह्वान समझदारों के लिए है। ऐसे लोग ही मुद्दे की बात समझ पाएंगे। नासमझ नहीं समझ पाएगा। अगर किसी नासमझ आदमी को परामर्श दिया जाएगा तो उसका अर्थ होगा, किसी बंदर को परामर्श देना जो पागलपन ही कहलाएगा। उसमें परामर्श देने वाले का ही नुकसान होगा। चिड़िया ने बंदर को एक बार परामर्श दिया था, बंदर ने उसका घोंसला ही उजाड़ दिया।

व्यक्ति को जैसे ही समझ आती है, उसके जीवन में क्रांति घटित हो जाती है, जीवन में बड़ा परिवर्तन, बदलाव आ जाता है। वह विचार और समझदारी ही क्या, जो हमारे जीवन में बदलाव न लाए? यदि हमने क्रोध के बारे में सोचा, चिंतन किया और फिर भी क्रोध किया तो वह चिंतन किस काम का? मनुष्य की मुक्ति तो तभी संभव है, जब वह जितनी गहराई से क्षमा और प्रेम की बातें करे, उतनी ही गहराई के साथ अपने भीतर प्रेम व क्षमा को रखे। गहराई में तो क्रोध बसा है, वासना भरी हुई है और जब ऐसा है तो ऊपर का दिखावा महज एक छल है। भीतर की गहराई तक क्षमा तथा प्रेम की भावना होगी तभी व्यक्ति के जीवन में क्रांति घटित होगी, मुक्ति होगी। जितना गहरा अंधकार है, उतनी ही गहराई तक प्रकाश जाएगा तब ही जीवन के अंतःस्थल से प्रकाश की किरणें फूटेंगी, अंधकार नेस्तनाबूद होगा। हमें विचार करना होगा; विचार किसी परमात्मा, शास्त्र, धर्म आदि के बारे में करना जरूरी नहीं है, विचार केवल अपने बारे में करने की जरूरत है। अपने बारे में विचार करना ही जीवन के द्वार पर अध्यात्म की दस्तक होगी। जीवन के क्षितिज पर अध्यात्म का प्रकाश होगा।

हमें अपने बारे में विचार करना होगा कि हम क्या हैं, हमारी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति कैसी है? हमारे विचार किस केन्द्र पर घूम रहे हैं, इस बारे में सोचना होगा। हमें विचारों की विपश्यना, विचारों की शुद्धि करनी होगी। ऐसा करके हम अपनी ही विपश्यना करेंगे। आत्म-ज्ञान और कुछ नहीं, अपने बारे में जान लेना, जैसी वास्तविकता है, वैसा जान लेना ही तो आत्म-ज्ञान है। ऐसा नहीं है कि आत्म-ज्ञान आज घटित नहीं होगा। मनुष्य के साथ ही आत्म-ज्ञान घटित होता है, हो रहा है और होता रहेगा। जब तक आदमी अपने आप को नहीं समझेगा, उसके भीतर आत्म-ज्ञान घटित न होगा। आदमी ने अपने विचारों को देखा और जाना कि उसके भीतर क्रोध है और वह क्रोध से परेशान है तो समझो, उसने आत्म-ज्ञान की पहली सीढ़ी चढ़ ली, आत्म-ज्ञान का पहला चरण पार कर लिया। अपनी अच्छाइयों को जान लेना ही आत्म-ज्ञान नहीं है, अपनी बुराइयों को जान लेना भी आत्म-ज्ञान है।

आत्म-ज्ञान में पहला शब्द आत्मा से बना है। आत्मा कोई शब्द नहीं है, काल्पनिक चरित्र नहीं है। आत्मा यानी हम स्वयं। हमारा अस्तित्व आत्मा के कारण ही है। 'मैं' का वाच्यार्थ ही आत्मा है। वही तत्त्व आत्मा है, जिसके रहते हम जीते हैं और जिसके निकल जाने पर हमारे परिजन हमें श्मशान छोड़ आते हैं। क्रोध भी हमारी आत्मा से ही आ रहा हैं और प्रेम भी हमारी आत्मा से ही आ रहा है, इन्हें ऊर्जा हमारी आत्मा से मिल रही है। आत्मा ठंडी हो गई तो चित्त, मन, शरीर, प्राण सब शांत हो जाएंगे। ये सब एक दूसरे में घुले-मिले हैं।

हम कभी भी पूर्ण शुद्ध नहीं रहे हैं। अशुद्धियां हमारे साथ रही हैं, लेकिन शुद्ध हुआ जा सकता है। स्वयं को शुद्ध बनाया जा सकता है। विचारों की विपश्यना के लिए भीतर दीप प्रज्वलित करना जरूरी है। यदि हम सत्य के बारे में सोचेंगे तो सत्य पैदा होगा। शिवत्व के बारे में सोचेंगे तो शिवत्व घटित होगा और सौन्दर्य के बारे में चिंतन करेंगे तो सौन्दर्य का रसास्वादन कर सकेंगे।

आदमी जिन विचारों पर घूमता है, उनके अलग-अलग प्रभाव होते हैं। उसके लिए धर्म, ध्यान, सामायिक, प्रतिक्रमण दिखावा भर है। ऊपर-ऊपर आदमी की मूल विचारधारा एक ही बिन्दु पर घूमती है- पैसा, प्रतिष्ठा या काम-वासना। आदमी चौबीस घंटे इन तीनों के आसपास ही घूमता है। जो व्यक्ति विचारों की विपश्यना करेगा उसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस बात का अहसास तुरंत हो जाएगा।

पैसे के लिए आदमी अपने ईमान को बेच डालता है। भाई अपने भाई की हत्या कर देता है, जन्मदाता बाप को भी नहीं छोड़ता। पैसे का नशा ऐसा ही होता है। धन आए मुट्ठी में, ईमान जाए भट्टी में। आदमी सुबह से पैसे के लिए जुटता है। दिन भर यह दौड़ जारी रहती है। मैं नहीं कहता कि धन कमाओ ही मत। धन के अलावा भी जीवन में विचार के कई बिन्दु हैं, दीप हैं, जो जलने चाहिये। धन भी जरूरी है। उससे हम जीवन की सुख-सुविधाएं बटोरते हैं। पैसा न हो तो समाज में दो कौड़ी की इज्जत न होगी।

पुरुष धन खर्च कर अपने पापों का प्रायश्चित कर लेता है, औरतें तपस्या, मासखमण आदि कर प्रतिष्ठा अर्जित कर लेती हैं। तो क्या धर्म के दो ही रूप हैं - दान और तप? समाज में आयोजित एक समारोह में पैसे वाले को माला पहनाई जा रही हो, उस वक्त आप देखिएगा, वहीं एक कोने में कोई गरीब दुबका बैठा सारा तमाशा देख रहा होगा। उसके दिल पर क्या बीत रही होगी, इसका अंदाज वह खुद ही लगा सकता है। यह कोई नहीं पूछता कि पैसा किस तरह कमाया, बस पैसा चाहिए।

जो लोग धर्म करते हैं, वे भी इसलिए करते हैं कि और धन कमाने का रास्ता खुले। गुरु से ज्ञान पाने कम और धन कमाने की तिकड़में सीखने की चाह में ज्यादा लोग आते हैं।

धर्म के द्वार पर विचारों की शुद्धि के लिए, अपने को ऊपर उठाने के लिए आओ। बाहर-बाहर धर्म के लिए कुछ करना दिखावा होगा; जीवन को ऊंचा उठाना और बात है। गरीब की आत्मा में धर्म के प्रति जितनी निष्ठा होगी, उतनी अमीर के मन में न होगी। धन और धर्म अलग-अलग चीजे हैं, लेकिन हमने इन्हें मिला दिया है। धन आवश्यकता है, धर्म मनुष्य का जीवन। धन से सुख-सुविधाएं बटोरी जाती हैं, जबकि धर्म से जीवन के मूल्य उपलब्ध किए जाते हैं।

पैसा कमाने के लिए आदमी हर जायज-नाजायज काम करने को तैयार हो जाता है, लेकिन ऐसा करके तुम अपना जीवन सफल नहीं बना पाओगे, जीवन में विषमताएं ही पैदा होंगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरी धुरी है पद-प्रतिष्ठा। इसके लिए आदमी न जाने क्या से क्या कर जाता है। वह मूर्ति की प्रतिष्ठा तो करवा देगा लेकिन अपने ही भाई की मदद नहीं करेगा। व्यक्ति की पूरी जिन्दगी दोहरे मापदण्डों से भरी हुई है।

लोग मंदिरों का निर्माण करवाते हैं, लेकिन वह भगवान के नाम से कम, बल्कि बनाने वाले के नाम से अधिक चर्चित हो जाता है। बिड़ला मंदिर तो बहुत बन गए हैं लेकिन विष्णु कहां गए। मुख्य द्वार तो बिड़ला का है। कोई संस्था, धर्म, समाज यदि व्यवस्था कर दे कि आप चढ़ावा तो बोल सकते हैं, लेकिन मूर्ति पर नाम नहीं खुदेगा तो यकीन मानिये कोई आगे नहीं आएगा। यदि कोई संकल्प कर ले कि मंदिर तो बनवाएंगे, मगर प्रतिष्ठा करने वाले आचार्य का नाम नहीं लिखा जाएगा, तो आप पूरा देश घूम आइये, आपको आसानी से आचार्य नहीं मिलेंगे।

सारा झगड़ा नाम का है। नाम के पीछे जो तत्त्व छिपा है, उसकी तलाश? आत्मा का तो कोई नाम नहीं होता, और लोग नाम भज रहे हैं, मालाएं जप रहे हैं। राम नाम का जप। अरे यह तो दशरथ का दिया नाम था। 'राम' भगवान थोड़े ही है, यह तो सम्बोधन है। भगवान तो राम में है। इन्सान भगवान नहीं होता। इन्सान में भगवान होता है। असली चीज तो भगवत्ता है। अगर भगवत्ता को प्रणाम करने के भाव आ जाएं तो राम, कृष्ण, महावीर और गांधी में कहीं कोई फर्क ही नहीं है। सब में भगवत्ता है, सिर्फ नाम अलग-अलग हैं। नाम तो पंडितों के दिए हुए हैं, पुकार के लिए, महज पहचान के लिए, बुलावे के लिए। आदमी चला गया, नाम भी चला गया, मगर आत्मा कभी नहीं मरती। वह तो अजर-अमर है, केवल चोला बदलता है।

मनुष्य की सारी ऊर्जा धन, प्रतिष्ठा और काम के ऊपर ही खत्म हो रही है। इसी बात का तो गम है। राजनीति में कोई पद के लिए दौड़े तो बात समझ में आती है कि राजनेता का कोई स्वार्थ होगा। सेवा ही करनी है तो बिना पद ही की जा सकती है, लेकिन समाज में भी लोग पद के पीछे भागते नजर आते हैं। आदमी पद के लिए न जाने कितने विरोधाभास खड़े करता है। समाज में यदि कोई पद के लिए दौड़ रहा है तो इसका मतलब यही है कि इसके पीछे उसका कोई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वार्थ है। होना यह चाहिये कि समाज के लोग आपके पास आकर कहें कि आप यह पद संभालिये और समाज को संचालित कीजिये। आप में इसकी योग्यता है लेकिन हो इसका उलटा रहा है।

समाज आपसे दरख्वास्त नहीं कर रहा, उलटे आप निवेदन कर रहे हैं। जरूर कहीं चूक कर रहे हो। जीवन का सत्य तभी सत्य लगेगा जब उसे सत्य समझने का प्रयास किया जाएगा। वह सत्य जीवन को रूपान्तरित करेगा। इसलिए जब समाज चाहे कि आप व्यवस्था दें, तभी आपको पद संभालना चाहिए। जिस दिन एक व्यक्ति भी खड़ा होकर कह दे कि उसे आपके क्रिया-कलाप पर संदेह है तो उसी समय पद छोड़ दें। एक वक्त था जब राजनीति में डॉ. राम मनोहर लोहिया और राजगोपालाचार्य जैसे लोग केवल इसी बात पर पद छोड़ देते थे।

तीसरी चीज है काम-वासना। आदमी के दिन के बारह घंटे तो धन कमाने के लिए भागदौड़ में ही बीत जाते है। इसमें थोड़ा समय वह प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए भी खर्च कर देता हैं। शेष बारह घंटे वह सेक्स के ध्यान में ही लगा रहता है। वह इसी जुगाड़ में रहता है कि उसकी कामना पूरी हो जाए। ऊपर कोई व्यक्त करे या न करे, अवचेतन में, काम-वासना के विचार रहते हैं। काम की ज्वाला जलती रहती है। वक्त-बेवक्त 'काम' हर समय मनुष्य के मन-मस्तिष्क पर छाया रहता है। जब विचार समाप्त होते हैं तभी हम जान पाते हैं कि हमारे मूल विचार क्या हैं, हमारे विचारों की मूल धुरी ही उसकी पहचान करा देती है।

आप एकांत में बैठ जाएं और विचारों को आने दीजिये। जैसे ही विचार समापन की ओर पहुंचेंगे, आपको पता चल जाएगा कि वास्तव में आपके मन में क्या है। किसी की केन्द्रीय धुरी धन, तो किसी की प्रतिष्ठा और किसी की धुरी 'काम' पर घूमती है। तीनों घूम-फिर कर आते रहते हैं। आदमी जब तक विचारों की विपश्यना नहीं करेगा तब तक उसके भीतर ऊहापोह की स्थिति बनी रहेगी। इसलिए विचारों को विशुद्ध करना हमारी पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। जब तक विचार विशुद्ध न होंगे, हम जीवन के मूल्यों को उपलब्ध नहीं कर पाएंगे।

यश, धन और काम - ये तीनों हमारे जीवन के अशुभ केन्द्र हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन्हें शुभ करने के लिए हम 'सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् के बारे में निरंतर सोचेंगे तो हमारे भीतर ये तीनों घटित होंगे ही। कोई आदमी कामुक है और बलात्कार करना चाहता है तो वह निरंतर इस बारे में सोचते-सोचते बलात्कार का रास्ता ढूंढ ही लेगा। इसी तरह कमाने वाला धन प्राप्ति का, प्रतिष्ठा का इच्छुक प्रतिष्ठा प्राप्ति के रास्ते ढूंढ लेगा। जब सोचने से ये सब उपलब्ध हो सकते हैं तो सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् क्यों नहीं उपलब्ध हो सकते?

आदमी जैसा सोचेगा वैसा ही हो जाएगा। जैसा अपने को बनाना चाहेगा, वैसा बन जाएगा। जो बिन्दु सुहाए उसी के बारे में सोचो। शिव से प्रेम है तो उसके बारे में सोचो। एक केन्द्र भी जाग गया तो शेष दोनों को जागना ही पड़ेगा। जिसे सौन्दर्य से प्रेम है, वह कभी अशिवकर काम नहीं करेगा, असत्य का प्रयोग नहीं करेगा, चोरी नहीं करेगा क्योंकि चोरी से बड़ा कुरूप सत्य दूसरा कोई नहीं है। वह सेक्स का सेवन भी नहीं करेगा।

सौंदर्य के मायने यहां उस सौंदर्य से नहीं है जो पल-पल बदलता रहता है। मैं तो उस सौंदर्य की बात कर रहा हूं जो जीवन में फूल खिलाता है और वहां कोई भी चीज गलत नहीं होती, हो भी नहीं सकती। एक बिन्दु को पकड़ लेने वाले आदमी के अधिकार में शेष दो बिन्दु भी आ जाते हैं। कोई भी एक बिन्दु चुन लो। जैसा सोचोगे, वैसे ही बन जाओगे। प्रेम के बारे में सोचोगे तो आपकी वाणी में प्रेम छलकेगा। अब्राहम लिंकन घर से असेम्बली के लिए रवाना हुए। राह में उन्हें एक जगह कीचड़ में जीवन और मौत से संघर्ष, करता एक सूअर दिखाई दिया। वे वहीं रुक गए और जब तक वह सूअर कीचड़ से बाहर नहीं निकल आया, वे वहां से रवाना नहीं हुए। जिसके मन में प्रेम होगा, वही ऐसा कर सकेगा। इसलिए कहता हूँ कि शुभ का चिंतन निरंतर जारी रहना चाहिए। बदलाव आएगा, जरूर आएगा। यही तो सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् का मूल मंत्र है।

सोच ऊंचा हो, व्यक्ति को उत्सवित और अपराध-मुक्त करने के लिए यह जरूरी है। 'तिहाड़' में इसके प्रयोग किये गये और आश्चर्यकारी परिवर्तन सामने आए। मैंने अभी इन्दौर और जोधपुर के कारागृहों में विचार-परिवर्तन के प्रयोग किये। कैदियों को इसकी जरूरत है। गलत और विकृत सोच के चलते ही दुनिया में इतने अपराध,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आतंक और हिंसा है। सोच में अगर सत्य हो, शिवत्व हो, सौन्दर्य हो, तो तुम्हारा सोच तुम्हारे लिए अन्तर की सुवास बन सकता है, प्रकाश हो सकता है।

अभी तो तुम्हारे भीतर फालतू के विचार चलते रहते हैं और वह भी दिन-रात, सो गये तो सपने में भी। सोच-विचार सार्थक हो, तो सोच तुम्हें ऊंचा उठा सकता है। एक उजड्ड सोच आदमी को कभी उर्वर नहीं बना सकता। सोच को सकारात्मक रूप दो, सार्थक और सृजनात्मक दिशा दो। भीतर का अंधकार कितना भी घना क्यों न हो, अमावस का भी अंधकार क्यों न हो, आखिर वह बलहीन है, निर्बल है। ज्योति कितनी भी छोटी क्यों न हो, फिर भी वह सबल है, क्योंकि ज्योति परमात्मा का अंश है। हमारे ऊंचे सोच की ज्योति हमें अंधकार से बचाये रखेगी, सुख-शांति के प्रकाश से अभिभूत रखेगी।

सम्भव है, आज तुम हारे हुए अपने-आपको महसूस करो, पर नहीं। अन्ततः तुम जीतोगे। 'सत्यमेव जयते' छोटी-मोटी लड़ाइयां भले ही हार जाओ, पर आखिर विजयश्री तुम्हारे हाथ होगी। सत्यमेव जयते - आख़िर तो सत्य ही जीतता है। सत्य खुद समर्थ है हर हार से ऊपर उठने के लिए, अपनी सुरक्षा के लिए। कृपया इधर-उधर की चिंताओं को छोड़ो, मन में पल रही ऊल ज़लूलता से ऊपर उठो। हृदय में, अपने विचार में, अपनी सोच में सच्चाई और सौन्दर्य को स्थान दो। तुम तो बदलोगे ही, तुमसे तुम्हारा जहान भी बदलेगा।

अच्छी पुस्तकें पढ़ें, अच्छे लोगों से अपनी मैत्री रखें, कोई भी काम करने से पहले यह सहज जांच लें कि इससे मेरा और औरों का बुरा तो नहीं हो रहा है। ध्यान रखने के बाबजूद यदि कोई गलत या अमंगल कार्य हो जाये, तो रोये नहीं। अपने विश्वास-पात्र को कहकर या तो मन हल्का कर लें, या उसके बोझ से स्वयं को अलग करें। भविष्य में सावधान रहने का संकल्प कर लें। ध्यान करें, ध्यानपूर्वक जियें।

मूल मंत्र है : सार्थक पहलुओं पर सोचें। उन्नत विचार से अपने आपको उन्नत बनाएं, ऊँचा उठाएं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समय की चेतना

समय मनुष्य की चेतना है। जिसे समय की चेतना उपलब्ध है, वह व्यक्ति आत्मवान है, स्वयं को उपलब्ध है। महावीर ने अध्यात्म के समस्त धरातलों पर समय के ही कबूतर उड़ाये हैं। समय के ही महल-मेहराब खड़े किए हैं। यह कम महत्व की बात नहीं है कि महावीर ने अपनी समस्त साधना और आराधना का सार 'सामायिक' को बताया। यह महत्वपूर्ण बात है कि 'सामायिक' का निर्माण समय से हुआ है।

महावीर ने अपने सिद्धांतों को दूसरा नाम 'समय' दिया। मनुष्य की आत्मा को दूसरा नाम 'समय' दिया। ध्यान का दूसरा नाम 'समय' दिया। महावीर के लिए आत्मा भी समय है, सिद्धांत भी समय है और ध्यान भी समय है। जो समय को उपलब्ध है, वह सामायिक है। महावीर की 'सामायिक' पच्चीस सौ वर्षों तक जीवित नहीं हो पाई, लेकिन जब अल्बर्ट आइंस्टीन ने समय के संदर्भों की खोज की तो महावीर की सामायिक फिर जीवित हो सकी। यहाँ मैं सामायिक को एक विशेष अर्थ में ले रहा हूँ - यह परम्परागत सामायिक नहीं है। मेरे लिए समय की चेतना ही सामायिक है।

जीवन में जितनी भी गतिशीलता है, उसका आधार समय ही है। समय न हो तो यह गति, प्रगति कुछ न होगी। आदमी पदार्थ होकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रह जाएगा, मृत हो जाएगा और मृतक के लिए समय का महत्व नहीं है। मृतक तो खुद ही सड़ जाएगा। बिना समय के समृद्धि हो ही नहीं सकती। यदि आदमी के अंतर्मन से समय निकल जाए, समय की चेतना निकल जाए या चेतना का समय निकल जाए तो फिर गति और वृद्धि नहीं है। फिर तो न सांस है, न प्राण और न ही प्रगति।

समय में गति सामायिक है, समय में स्थिति सामायिक है। समय के अभाव में सब निरर्थक है। मृत का काम ही है सड़ना और गलना। समय निकल गया तो फिर स्पंदन ही कहां रहेगा? मृत चीज का सड़ना-गलना बहुत तेजी से होता है। चेतना के साथ ऐसा नहीं होता। जब तक चेतना है, शरीर में एक छोटा-सा घाव भी हो जाए तो उसे नासूर बनने में छह महीने लग जाते हैं, लेकिन मृत शरीर बहुत जल्दी गल जाता है। मेरे देखे व्यक्ति को समय का भरपूर उपयोग करना चाहिये। खूब मेहनत करना चाहिये। पचास की उम्र तक समय का जी भर उपयोग करो। अभी अगर काम से जी चुराने लगे, तो याद रखना बुढ़ापे में कोई एक गिलास पानी पिलाने वाला नहीं मिलेगा। इस हाड़-मांस में जंग मत लगने दो। शरीर एक शस्त्र की तरह सदा चुस्त, तैयार रहना चाहिये। पचास तक गति, पचास के बाद स्थिति। अन्तर-स्थिति। जो होना था, हो लिया। जो करना था, कर लिया। अब धीरज। अब स्थिति। वेदों के संन्यासाश्रम के पीछे मूलभूत यही भावना है। समय ही चेतना है। मैं समय पर इसीलिए चर्चा कर रहा हूं, क्योंकि समय में ठहरने का नाम ही सामायिक है। समय में स्वयं को स्थिर करने का नाम ही समाधि है; ध्यान है। यदि शरीर रुक जाए या ठहर जाए तो इसका नाम आसन है और सांस रोकी जाए तो उसे प्राणायाम कहेंगे। लेकिन जब समय में चेतना रुक जाती है तो उसे सामायिक कहेंगे, समाधि कहेंगे।

हम प्रायः तीन आयामों की चर्चा करते हैं, लेकिन जीवन 'त्रिआयामी' नहीं है। विज्ञान के अनुसार तो प्रकृति में लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई या गहराई के तीन आयाम ही हैं। ये तीनों आयाम पदार्थ को परिभाषित करते हैं। लेकिन जब हम समय की बात करेंगे तो एक आयाम और जुड़ जाएगा। इसमें शरीर, विचार और मन को भी देखा जाता है। शरीर एक चरण है, उसके भीतर एक और सूक्ष्म शरीर है, जिसका नाम वचन है, विचार है। विचारों के भीतर भी एक और सूक्ष्म

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर है जिसका नाम मन है। फ्रायड ने इसे चेतन और अवचेतन मस्तिष्क कहा है, महावीर ने उसी को वचन और मन कहा है।

विज्ञान ने तो हर चीज के तीन आयाम माने हैं, लेकिन एक चौथा आयाम और होता है। यह सबसे महत्वपूर्ण आयाम है। उस चौथे आयाम के कारण ही बाकी तीन आयाम परिभाषित किए जा सकते हैं। उसके कारण ही किसी तत्त्व की लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई को मापा जा सकता है। आखिर बिखरे कणों को बांधने वाला है कौन? वह है उस वस्तु की चेतना। वह चेतना ही समय है। यही तत्त्व है जो किसी के लिए जन्म का कारण बनता है तो किसी के लिए मृत्यु का। एक ही क्षण में पड़ौसी के घर बच्चा होता है और थाली बजती है। वहीं दूसरे पड़ौसी के यहां औरत चिल्ला उठती है, क्योंकि उसका बच्चा मर चुका होता है। क्षण वही है। किसी की चेतना निकली, किसी में चेतना ने प्रवेश किया। कहीं का चिराग जला और कहीं का दीप बुझा। जिसमें चेतना आई उसका नाम जीवन है और जिसकी चेतना निकल गई, उसकी मृत्यु हो गई।

समय की भूमिका महत्वपूर्ण है। समय ही मनुष्य की चेतना है। इसलिए जो व्यक्ति अपनी चेतना को उपलब्ध हो रहा है, वह वास्तव में समय को उपलब्ध हो रहा है। वह स्वयं को और सामायिक को उपलब्ध हो रहा है। मैं समय के बारे में कितना भी बोल दूं, मैं जानता हूं, फिर भी समय को पूरी तरह व्याख्यायित नहीं किया जा सकेगा।

समय इतना रहस्यमयी है कि उसमें जितने अधिक डूबोगे, रहस्य उतने ही ज्यादा गहरे होते चले जाएंगे। अगर समय कोई चीज होती तो उसकी परिभाषा हो सकती थी। उसकी कोई सीमा तय की जा सकती थी। समय का कोई स्थान होता तो उसे परिभाषित किया जा सकता था, लेकिन समय का न तो कोई स्थान है और न ही समय कोई चीज है। समय तो बस, समय है। समय की उपमा समय को छोड़कर और कोई नहीं है।

किसी भी मकान की व्याख्या करना आसान है। उसकी ईंटें, चूना, गारा आदि का विश्लेषण हो सकता है, लेकिन समय ऐसी कोई चीज नहीं है। समय को समझ कर भी कोई पूरी तरह नहीं समझ पाया है। जो व्यक्ति सामायिक को उपलब्ध हो गया, उसने समय को भली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार समझ लिया क्योंकि वह चेतना को उपलब्ध हो गया। समय ही मनुष्य की चेतना है।

विज्ञान की दृष्टि से देखें तो पानी की परिभाषा दी जा सकती है। हाइड्रोजन व आक्सीजन के संयोग से पानी बनता है। पानी पदार्थ है, तत्व है, इसलिये उसकी व्याख्या हो सकती है। अगर पूछो कि हाइड्रोजन कैसे बना तो विज्ञान उसकी भी परिभाषा दे देगा कि इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन व पोजिट्रोन से मिलकर ही हाइड्रोजन बना है। लेकिन विज्ञान से पूछा जाए कि इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन आदि की परिभाषा क्या है तो वह भी चुप हो जाएगा। ये तो ऊर्जा- कण हैं जो वातावरण में हवा की तरह बह रहे हैं। एक चेतना भर है। तो पानी की व्याख्या हो सकती है। मकान की, मनुष्य की भी व्याख्या हो सकती है, मगर मनुष्य के भीतर जो जीने वाला तत्त्व है, उसकी व्याख्या नहीं हो सकती।

शरीर में चमड़ी की परिभाषा है। चमड़ी उतार दो तो मांस दिख जाएगा, हड्डियां दिख जाएंगी, खून भी नजर आ जाएगा, लेकिन जिसके कारण ये सारे तत्त्व जुड़े हुए हैं, जिसके कारण इस शरीर में खून दौड़ रहा है, मनुष्य जीवित है, वह चेतना दिखाई नहीं देगी। वह तो बस है, महसूस की जा सकती है। इसी तरह समय है। समय को हम जितनी बारीकी से देखें, वह हमें उतना ही पारदर्शी दिखाई देने लगेगा। कहीं कोई धूल का कण तक नजर नहीं आएगा।

मेरा प्रयास मात्र इतना है कि आदमी को किसी तरह समय का बोध हो जाए। हैरानी यह है कि मैं तीन दिन से समय की महत्ता पर बोल रहा हूं लेकिन कुछ लोग कभी नौ बजे तो कभी सवा नौ बजे तक पहुंच रहे हैं, जबकि मैं नियमित रूप से पौने नौ बजे प्रवचन शुरू कर देता हूं। इसका अर्थ यही हुआ कि समय का बोध अभी दूर है। समय की कोई चेतना ऐसे लोगों को उपलब्ध नहीं हुई। समय का उन्होंने कोई मूल्य नहीं समझा। देर से पहुंचने से तुम्हारा ही नुकसान होता है।

रात-दिन में चौबीस घंटे होते हैं, उसमें एक घंटा भी बहुत होता है। लेकिन हमने घंटे में भी मिनट और सैकेण्ड्स तक बांट रखे हैं। आप इसे तय मानें कि सैकेण्ड्स का लाखवां हिस्सा भी महत्वपूर्ण है, फिर उसकी उपेक्षा क्यों? भगवान महावीर ने अपने शिष्यों को सम्बोधन दिया। उन्होंने एक बार नहीं, हजार बार शिष्यों से कहा कि मेरे प्रिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शिष्यों, तुम क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो। महावीर ने अपने संपूर्ण दर्शन में समय पर जोर दिया है।

महावीर कहते हैं - 'क्षण भर का प्रमाद भी तुम्हें डुबो देगा आपने पूरा समंदर पार कर लिया, खुद को जाग्रत रखा, लेकिन जैसे ही, किनारे पर आए, प्रमाद किया और डूब गए। तूफान उठा, नैया डूब गई। सात समंदर पार करके भी कुछ हाथ न लगा। अस्सी साल का जीवन जीकर भी जीवन को उपलब्ध न हो पाए तो जीने का क्या अर्थ हुआ? आपने बीस साल जीकर भी उपलब्धता हासिल कर ली तो सार्थक हो गया जीवन। उस अस्सी साल जीने वाले से आप बेहतर स्थिति में हैं। अगर हमें गधे का सौ वर्ष का जीवन मिले तो भी क्या काम का? इसकी जगह शेर का दो दिन का जीवन ही उपलब्धि-मूलक हो सकता है।

मरने की कोई भी तिथि हो सकती है। सोमवार को मरे या शनिवार को, कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन जीवन को उपलब्ध किए बगैर मर गए तो फर्क पड़ जाएगा। भीतर जो तत्त्व है उससे साक्षात किए बिना मर गए तो फिर निश्चित तौर पर वह मृत्यु होगी। हर मृत्यु पुनर्जन्म की यात्रा बनती है। कहते हैं कि जब महावीर के निर्वाण की वेला आई तो उन्होंने अपने प्रिय शिष्य गौतम को बुलाया। महावीर ने गौतम से कहा कि तुम अमुक गांव चले जाओ, वहां मेरा शिष्य सोमदत्त रहता है। तुम उसे उपदेश देकर, सम्यक्त्व प्रदान कर आओ।

महावीर ने अपने निर्वाण के समय प्रिय शिष्य को दूर भेज दिया। क्योंकि मृत्यु के समय जो जितना करीब होगा वह उतना ही जोर से छाती पीटेगा। वह सबसे ज्यादा मातम मनाएगा। इसलिए मृत्यु के समय अपने निकटस्थ लोगों को अपने पास मत रखो उल्टे दूर के लोगों को अपने पास बुला लो। लोग मृत्यु के समय जो उसके करीब के होते हैं, उन्हीं को याद करते रहते हैं। प्रेत-योनि में वही लोग जाते हैं जो किसी की यादों को विकृत रूप से साथ लेकर मरते हैं। ऐसे समय भगवान को याद करले तो उसका बेड़ा पार हो जाए। मृत्यु तभी धन्य है, जब मृत्यु हो, प्रभु करे, उससे पहले निर्वाण हो जाए।

इसीलिए भगवान महावीर ने निर्वाण के समय गौतम को अपने से दूर कर दिया। जब गौतम सोमदत्त को उपदेश देकर लौट रहे थे तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राह में उन्हें सूचना मिली कि महावीर का निर्वाण हो चुका है, वे परम भगवत्ता को उपलब्ध हो चुके हैं तो गौतम खूब रोये। उसका रोना स्वाभाविक था। जिन्होंने जीवन भर अपने पास रखा, लेकिन मृत्यु के समय दूर भेज दिया। जब वह छाती पीट-पीट कर रोने लगा तो दूसरे आदमी ने कहा - 'गणधर, अब रोने से कुछ नहीं होगा। संभलो, चेतो, महावीर का तुम्हारे लिए संदेश है। क्षण भर का भी प्रमाद मत करना। गौतम ने पूछा - 'क्या'? उसने बताया कि मरने से पहले महावीर ने तुम्हें याद किया था। वे तुम्हारे लिए एक सूत्र छोड़ गए हैं। सूत्र यह है - 'हे गौतम! जब तू सारे संसार के समुद्रों को पार कर चुका है तो अब किनारे पर क्यों बैठा है। जल्दी कर, छलांग लगा और पार हो जा। तूने अगर अब भी विलंब किया तो यह मौका फिर नहीं आएगा, तेरी नैया किनारे पर ही डूब जाएगी।'

सच कहा महावीर ने। जीवन एक नैया ही तो है। यह शरीर एक नाव है, जिसमें कई छेद हो गए हैं और पानी भर रहा है, उसे नहीं छोड़ा तो डूब जाएगा। बस एक छलांग लगानी है और तुम समय के पार होओगे। यह सुनकर गौतम जैसे गहरी नींद से जागे। यही वह सूत्र था जिससे गौतम को परम ज्ञान 'कैवल्य' प्राप्त हुआ। 'गौतम! क्षण भर का भी प्रमाद मत कर।' 'समयं गोयम मा पमायए'। जो व्यक्ति समय के प्रति सदा जागरूक और सक्रिय रहता है, वह धन्य है। जो लोग प्रमाद में पड़े हैं, वे सोये हुए हैं। उनके लिए कलियुग है। वे अधन्य हैं, वे कृतपुण्य नहीं कृत-पाप हैं। वे जीवित नहीं, मृत हैं। उनमें कहीं प्राण का संचार नहीं है, जो समय के प्रति सावचेत व जागरूक नहीं है। जो व्यक्ति समय के प्रति पाबंद न हो, समय के प्रति अनुशासित न हो, वह अपने जीवन को कैसे अनुशासित रख पाएगा।

जो व्यक्ति समय के मुताबिक नहीं चल सकता वह व्यक्ति कभी सिद्धांतों के मुताबिक भी नहीं चल पाएगा। विश्वास ही नहीं होता कि जिसके कारण जीवन बना है और जिसके अभाव में जीवन मृत हो जाएगा, उस तत्त्व के प्रति भी व्यक्ति जागरूक नहीं है। ऐसा व्यक्ति आत्मा के प्रति भी जागरूक नहीं हो सकता। वह व्यक्ति सामायिक तो जिन्दगी भर कर जाएगा, मगर उसकी सामायिक केवल गिनती भर होगी। वह कहता फिरेगा कि मैंने जिन्दगी में इतने हजार सामायिक कर ली पर वह सामायिक को उपलब्ध नहीं हो सकेगा और केवल गणना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने में ही लगा रहेगा। गणना होगी, पर संवर नहीं।

लोग माला जप रहे हैं मगर भीतर से कुछ भी नहीं बदला। मन अब भी अशांत है। मन में उतनी ही दुर्भावनाएं हैं। केवल माला गिनी जा रही है। राम का नाम नहीं गिना जा रहा। कल पांच मालाएं फेरी थीं, आज पांच और हो गईं। जैसे एक पैसे वाला रोज शाम को तिजोरी में राशि बढ़ाकर चैन पाता है वैसे ही कुछ लोग केवल माला गिनकर प्रसन्न होते हैं।

तभी तो कबीर मजाक उड़ाते हैं - 'माला फेरत जुग भया, गया न मन का फेर। कर का मनका छोड़ दे, मन का मनका फेर।' व्यक्ति के मन में कुछ और ही चल रहा है और हाथ माला फेर रहे हैं। इसलिए कबीर कहते हैं 'कर का मनका छोड़ दे, मन का मनका फेर।' व्यक्ति भीतर का मनका नहीं फेरता। माला फेरता है, गिनती करता है, वैसे ही सामायिक को भी गिनता है। उम्र के वर्ष भी यूं ही बीत जाते हैं। अस्सी साल के हो गए। उससे पूछो क्या चीज उपलब्ध की, तो मुंह लटक जाएगा।

एक पोता अपने दादा के पास गया और उनसे पूछा - 'दादाजी आपने इतने वर्षों का जीवन जिया है, आपने क्या उपलब्ध किया?' दादा का जवाब था 'कुछ नहीं!' जरा सोचिये जो चीज अस्सी वर्ष तक नहीं प्राप्त कर सके, उसके लिए अब तड़फ रहे हैं। समय को व्यर्थ ही गंवाया जा रहा है।

एक पल कई गुल खिला देता है। उसी क्षण कोई पैदा हो रहा है तो कोई मृत्यु को प्राप्त हो रहा है। हर व्यक्ति मृत्यु की कतार में खड़ा है, जाने कब, किसका बुलावा आ जाए। नम्बर तो सभी का आना है। किसी का आगे तो किसी का पीछे।

जो व्यक्ति प्रमाद में जीता है वह सोये-सोये जी रहा है। वह कलि है। वह ऊपर-ऊपर भले ही सामायिक का, धर्म का लबादा ओढ़ ले, भीतर से वह कोढ़ का रोगी ही रहेगा। भीतर वही वासना भरी पड़ी हैं। किसी ने सौ बार सामायिक कर ली लेकिन अब भी उसके मन में क्रोध की तरंगे हैं तो क्या उसकी सामायिक सध गई? नहीं! किसी व्यक्ति ने अस्सी बसंत प्रतिक्रमण किए और उसके प्रतिक्रमण उसे पापों से न बचा पाए हों तो ऐसे प्रतिक्रमण किस काम के?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्धशती तक पूजा-पाठ करने के बावजूद मिलावट करने की आदत न छूटी हो, तो पूजा, पूजा कहाँ हो पाई! पाजी तो फिर भी पाजी ही रहा, भले ही एक बार नहीं, सौ बार हज कर लिया हो।

धर्म कहता है ' इच्छा निरोधस्तपः' इच्छाओं पर नियंत्रण कर लेना ही तप है। अगर जिन्दगी में दस-दस मास क्षमण करने के बाद भी वही वासना, वही क्रोध की तरंगें रहीं, तब तपस्या क्या हुई। तब तो आदमी ने अपनी काया को ही कष्ट दिया। शरीर के साथ ज्यादती की। हम खाना नहीं खाएंगे। एक माह तक मासक्षमण करेंगे। हमने किया क्या? बस खाना नहीं खाया, शरीर को जरूर कष्ट दिया। लोग मासक्षमण पूरा करने के बाद बैण्ड बजवाते हैं, जैसे किसी की शादी हो रही है। ये मास-क्षमण दुनिया में प्रतिष्ठा पाने के लिए किया या आत्मा के कल्याण के लिए?

धर्म संदेश देता है कि किसी को दायें हाथ से दान दो, तो बायें हाथ को भी पता नहीं चलना चाहिए। ठीक वैसे ही मासक्षमण भी करो तो खुद के घरवालों को भी पता नहीं चलना चाहिए। एक लाख रुपये का दान देकर समाज में प्रतिष्ठा अर्जित करने वाला कीर्तिदानी कहलाता है। अगर हो-हल्ला मचाकर दिया गया ऐसा दान बेकार है तो बैण्ड बाजे का मासक्षमण कितना उपयोगी होगा, खुद ही इस पर विचार कर लीजिये।

हर व्यक्ति भूखे पेट नहीं रह सकता, लेकिन मन को सुधार सकता है। मास-क्षमण की तपस्या के अंतिम दिन कोई अपरिग्रह संबंधी व्रत नहीं लिया जाता। अधिक से अधिक आभूषण शरीर पर लाद लिये जाते हैं। खुद के पास न होंगे तो मांग कर लाये जाएंगे। जब मैं किसी दीक्षा-समारोह को देखता हूं तो ताज्जुब होता है। दीक्षा की पत्रिका में दीक्षार्थी का जो फोटो देखता हूं, उससे कहीं वैराग्य की झलक दिखाई नहीं देती। जितनी राग की झलक उस पत्रिका से मिलती है, उतनी तो उसने अपनी जिन्दगी में भी नहीं देखी होगी। शादी में कोई दूल्हा भी इतने गहने नहीं पहनता होगा, जितने दीक्षा के वक्त पहने जाते हैं। पता नहीं बाद में पहनने को मिले या नहीं, अभी तो अपने मन की निकाल लें।

जब वैराग्य हो गया और मुनि बनना है तो फिर ये ताम-झाम भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्यों? कपड़े उतारे और निकल पड़े। आदमी बदल रहा है। भाव जगे या न जगे, हम ऊपर से बदलना जरूरी समझते हैं। दिखाना चाहते हैं कि देखो हम ऊपर से कितना बदल गए। एक मुखौटा उतारा है। समय ने तो न जाने कितने मुखौटे चढ़ा रखे हैं, यह किसी को पता है? ऊपर से तो कुछ-एक ही दिखाई देते हैं, अंदर तो बहुत सारे मुखौटे चढ़ा रखे हैं।

आप किसी को एक गाली दीजिये, उसके भीतर सोया सर्प तुरंत जाग जाएगा। भीतर तो मुखौटों की भरमार है। इसीलिये कहता हूं जीवन सोये-सोये बिताने के लिए नहीं है। वह तो जाग कर जीने के लिए है। प्रमाद में नहीं, अप्रमाद में जीने के लिए है। व्यक्ति को अपने भीतर के प्रति हर पल सावधान, सचेत रहना चाहिए। व्यक्ति के लिए यही सम्यकृत्व का कारण बनता है। तभी व्यक्ति समय को उपलब्ध होता है।

समय नष्ट करने वालों की कहीं भी कमी नहीं है। अब आप इस शहर को ही लीजिये। काम बहुत है, लेकिन निकम्मे बैठे हैं। सामने भोजन रखा है। हम कहेंगे पहले आप खाओ, सामने वाला कहेगा, नहीं, आप खाओ। दोनों एक-दूसरे को यही कहते चले जाएंगे और खाना ठण्डा हो जाएगा। जीवन भी ऐसे ही है, वह ठण्डा हो जाएगा। हम एक-दूसरे की खुशामद में जिन्दगी काट देंगे। एक की तारीफ, दूसरे की आलोचना, इसी में जिन्दगी बीत रही है। इससे आपने अपना भला क्या किया। दूसरे की बदनामी तो कर ही दी।

कहते हैं : एक महिला गर्भवती हुई। उसके पेट में दो बच्चे थे। नौ माह बीत गये लेकिन प्रसव नहीं हुआ। एक-दो-बीस और फिर अनेक वर्ष बीत गए। वह महिला पेट लिये ही बूढ़ी हो गई। जब उसकी मृत्यु नजदीक आने लगी तो उसने सोचा कि मरने से पहले पेट की सफाई तो करवा लूं। वह डाक्टर के पास गई। डाक्टर ने आपरेशन कर पेट काटा तो देखा कि दो प्रौढ़ भीतर बैठे हैं लेकिन बाहर नहीं आ रहे। कह रहे हैं, पहले आप जाइये, दूसरा कहता है नहीं, पहले आप.....! और इसी में माँ बेटे चल बसे। प्रमादवश कोई आगे नहीं आ पाया। आदमी ऐसे ही जिन्दगी बिता देता है, समय व्यर्थ चला जाता है। पहले आप, पहले आप की आदत छोड़ो और खुद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पहले आगे बढ़कर उपलब्ध कर लो।

मनुष्य आज जो समय विध्वंसक कार्यों में लगा रहा है, उसे सृजन में लगा सकता है। जिस समय को आप किसी की निंदा में लगा रहे हैं, उसे किसी की तारीफ करने में लगाइये, किसी को मधुरता बांटने में लगाइये। आदमी ने दिमाग की तलवार से समय के तीन टुकड़े कर दिए। अतीत, वर्तमान और भविष्य। लेकिन ध्यान रखिये, समय कभी टुकड़े नहीं हो सकता। कहने को तो आदमी वर्तमान में रहता है लेकिन वह अतीत की यादों में डूबा रहना चाहता है, भविष्य की कल्पना करता रहता है। अतीत तो आखिर अतीत है, वह तो बीत गया। जो बात बीत गई उसे याद क्या करना। इसमें तो हमारा नुकसान ही है। सोचने वाला हमारी चेतना नहीं है, हमारा मन है। समय के साथ चेतना का संबंध है। मन के साथ शरीर का संबंध है। जब समय चुक जाएगा तो शरीर मर जाएगा। शरीर के साथ मन भी मर जाएगा। चेतना की मृत्यु नहीं होती इसलिये जो व्यक्ति अतीत को याद करता है वह मात्र मृत का संकलन ही कर रहा है। अतीत की स्मृति मात्र मृत का संकलन है और भविष्य अतीत की प्रतिध्वनि है। जो बातें कल हुईं वह आने वाले कल भी होंगी। कोई आदमी दो घंटे बात करता है। अगर उसका सार निकालना चाहो तो वे ही बातें होंगी जो कल कर चुका है। शब्द बहुत सीमित हैं, जबकि समय असीम है। असीम समय में आदमी सीमित बातों को दोहराता भर है। हर व्यक्ति अपने जीवन में एक शब्द को कम से कम एक लाख बार तो दोहराता ही है। जो व्यक्ति मौन का अभ्यस्त है, वह जानता है कि यदि मैंने मौन नहीं रखा तो जो बातें दिन में की हैं, वही रात में होंगी। हर आने वाला कल आज की ही पुनरावृत्ति होता है।

हम जो आज कह रहे हैं, कल भी वही कहेंगे। मैं रोज-रोज बोलता हूं तो मैं जानता हूं कि बार-बार उसी बात को दोहरा रहा हूं। कहने का ढंग बदल जाता है, तरीका बदल जाता है। मूल बात तो यह है कि मैं चाहता हूं, आदमी को समय का बोध हो जाए। वह समय का मूल्य समझ जाए, समय का बोध हासिल कर ले।

किसी को याद करते हो तो मन याद करता है। कल्पनाएं करते हो तो वह भी मन करता है। चेतना केवल वर्तमान में है। जो बीत गई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो बीत गई। जो अतीत का खण्डहर बन गई, उसे अब क्या देखना। जिस चीज का अंतिम संस्कार कर दिया गया, उसे बार-बार याद करते चले जाने से वह जीवित नहीं हो जाएगा। तीर कमान से निकल गया तो निकल गया। उसका कितना भी पीछा करलो वह अपने लक्ष्य को बेधकर ही रुकेगा।

आप माला फेरने बैठे। एकाएक चिड़िया की चहचहाहट सुनाई दी तो आपको याद आया कि सुबह घर पर ऐसी ही चहचहाहट सुनी थी। इसके साथ ही आपको घर याद आ गया। फिर तो आप अपनी पत्नी, बच्चों आदि से मिलने में मशगूल हो गए। हाथ चलता रहा, माला घूमती रही, लेकिन आप कहीं ओर घूमते रहे। आखिर मन तो मन है। कहीं का कहीं चला जाता है लेकिन वापस वहीं आ जाता है। कोल्हू का बैल कितना भी चले, अन्त में जब वह रुककर आंख खोलता है तो देखता है कि एक ही जगह घूम रहा था। मन कितनी भी यात्रा करले, आखिर तो उसे वर्तमान में ही ठौर मिलती है।

आदमी वर्तमान में जी रहा है लेकिन चिंता भविष्य की कर रहा है। जो चीज है ही नहीं, उसकी कल्पना करता है। केवल सोचने से वह चीज थोड़े ही हो जाएगी। ऐसा ही हुआ, एक आदमी के पास एक मुर्गी थी। उसने दो अण्डे दिये। अण्डे देखकर वह सोचने लगा इन दो अण्डों से दो मुर्गियां निकलेंगी, फिर उन मुर्गियों के अण्डों से और मुर्गियां। इस तरह मेरे पास बहुत से अण्डे हो जाएंगे और फिर मैं पॉल्ट्री फार्म खोल लूंगा, खूब ऐश करूंगा। हवाई जहाज में घूमूंगा। वह ख्यालों में ही हवाई जहाज में जाने लगा है कि एक मक्खी उसके पांव पर बैठ गई। उसे उड़ाने के लिए उसने हाथ मारा तो उसकी आंख खुल गई। वह देखता क्या है कि उसके हाथ से अण्डे फूट गए हैं।

जो बात अभी हुई नहीं, भविष्य के गर्भ में है, उसकी चिंता में आदमी दुबला होता रहता है। जो होगा, देखा जाएगा। हमें जो समय वर्तमान में उपलब्ध हो रहा है, उसका उपयोग करना चाहिए। हम आज जियेंगे और कल आया तो कल भी जिएंगे। जब आदमी यह सोचेगा, तभी वह वर्तमान का आनन्द ले पाएगा। वर्तमान को जीना ही वास्तव में जीवन को जीना है। जो क्षण हमें आज उपलब्ध हुआ है, उसका सही उपयोग करना है। उपलब्ध क्षणों का, समय का उपयोग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने वाला ही समझदार है। समय चूक जाने के बाद तो मूर्ख भी सम्हल जाता है, समय के रहते चेतो इसी में तुम्हारी बलिहारी है।

अणु और परमाणु की बात करें तो विज्ञान ने एक सूक्ष्म अणु के भी लाख हिस्से करके दिखा दिये हैं। उस लाखवें हिस्से में भी विस्फोट की संभावना बता दी है जिससे कई देश सैकण्ड में समाप्त हो सकते हैं। जब अणु के एक-एक कण में इतनी ताकत है तो जरा सोचो, समय के एक-एक क्षण की कितनी क्षमता है। वह व्यक्ति मृत है जो समय का मूल्य नहीं समझता। जो समय का मूल्य आंकता है, उसके लिए जीवन का मूल्य है। मेरी समझ से तो जो आदमी प्रत्येक क्षण का उपयोग करने में लगा है वह कुछ न कुछ अवश्य कर गुजरता है। उसी से नये सृजन की, नई रचनात्मकता की नई उपलब्धि की आशा की जा सकती है। सच तो यह है कि समय में जीने वाला ही हर समय सामायिक में है, समय में है और ऐसा आदमी ही अपनी चेतना में है, अपनी आत्मा में है। वह पल-पल गंगा-स्नान कर रहा है। समय मनुष्य की पहली मर्यादा है। जीवन का पहला स्रोत है। समय है तो जीवन है, अन्यथा सब कफन सजा जनाजा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रज्वलित हो प्रज्ञा-प्रदीप

उपनिषदों में एक महान् सूक्त, एक महान् मंत्र है

'तमसो मा ज्योतिर्गमय।'

'हे प्रभु! ले चलो हमें अंधकार से प्रकाश की ओर, असत् से सत् की ओर, मृत्यु से अमृतत्व की ओर'। अगर जीवन में असत्य है तो हे प्रभु, हमें सत्य की ओर ले चलो। अगर बेइमानी है तो हमें ईमान की ओर ले चलो, अंधकार है तो हमें प्रकाश की ओर ले चलो।

असत्य चाहे बाहर का हो या भीतर का हो, असत्य, असत्य होता है। असत्य का अर्थ ही हुआ जैसे तुम हो, उसके विपरीत तुमने अपने आपको मान लिया है। अस्तित्व का, स्वयं का बोध सत्य है और अस्तित्व की पर में आसक्ति असत्य है। जब प्रकाश अपने स्वभाव से च्युत हो जाता है तो उस च्युति का नाम ही अंधकार है। जब अंधकार अपनी गहराइयों में छिपी हुई आभा को प्रकट कर लेता है, तो अंधकार में पनपने वाली आभा का नाम प्रकाश हो जाता है।

जीवन में कभी-कभी ऐसा होता है कि मनुष्य को बाहर का अंधकार घेर लेता है। अंधकार चाहे बाह्य हो अथवा आन्तरिक, बड़ा दुःखदायी होता है। यदि प्रकाश है तो लगता है कि कोई साथ है, जबकि अंधकार है तो बड़ा भय महसूस होता है। यदि मध्यरात्रि में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहल्ले की बिजली गुल हो जाए और तब तुम्हें अपने ही मकान की छत पर जाने को कहा जाए तो तुम नहीं जा पाते। किसी और के घर की छत हो, तो डर लगना स्वाभाविक है, पर तुम्हारे अपने मकान में तुम्हें डर लग रहा है, क्योंकि वहाँ अंधकार है। अंधकार तो अंधकार है। वह तो बड़ा डरावना व भयावह होता है।

'जो डर गया सो मर गया।' डाकुओं के खेमे से आया यह बड़ा क्रान्तिकारी सूत्र है। जब तक अंधकार है, तब तक डर है। जब तक डर है तब तक जिंदगी नहीं है। जब तक जिन्दगी नहीं है तब तक जीवंतता नहीं है और जब तक जीवंतता नहीं है तब तक जीवन के मूल्यों के प्रति आस्था नहीं है। अगर आस्था नहीं तो जीवंतता नहीं और जीवंतता नहीं तो साहस नहीं। जीवन का मार्ग तो ऐसा है कि यहां बिना साहस व धैर्य के एक कदम भी चलना मुश्किल है।

यदि बचने की प्रवृत्ति रही तो कहीं नहीं पहुंच पाओगे। उल्लू को कहा जाए कि तुम्हें प्रकाश में ले चलते हैं तो वह कहेगा 'नहीं'। उसकी ही तरह जो आदमी प्रकाश से डर गया , वह उल्लू बनकर रह जाएगा। रात ही तब दिन होगा और दिन उसके लिए पूर्णतया रात होगी। एक उल्लू ही ऐसा प्राणी है, जो अंधेरे में देखता है। उसे अंधेरा बड़ा रास आता है। प्रकाश में उसकी आंखें चुंधियां जाती हैं। जीवन में जो अंधकार में रस लेता है, वह चोर, बेईमान व उल्लू की तरह है।

जहां प्रकाश की संभावना और स्वागत होता है, वहीं पर जीवन में इंसानियत साकार होती है। अगर अंधकार से प्रकाश की यात्रा करनी है तो बहुत प्रयास की आवश्यकता पड़ती है। अगर धर्म-स्थान तक आना हो तो भी कितनी व्यवस्थाएं करनी पड़ती हैं। एक घंटा दुकान विलंब से खोलनी पड़ती है, पूजा-पाठ जल्दी निपटाते हैं, घर-गृहस्थी के झमेले निपटाते हैं। तब कहीं व्यवस्थाएं जुटाकर यहां पहुंचते हैं।

प्रकाश की यात्रा करनी पड़ती है, अंधकार से मुक्त होने के लिए, जीवन में परिपूर्णता के लिए। यह ठीक है कि कली बन गए, पर जब तक कली फूल नहीं बनती, तब तक उसका जीवन अपूर्ण कहलाता है। कली का होना ही पर्याप्त नहीं है, अगर कली फूल नहीं बन पाई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो यह उसका दुर्भाग्य है। कोई मनुष्य, मनुष्य नहीं बन पाया तो यह उसका दुर्भाग्य है, यह उसके पाप का उदय है। फूल का फूल के रूप में खिलना और खिले हुए फूल के रूप में अपने जीवन को विश्राम देना, उसके जीवन में निर्वाण और महामोक्ष की बेला का घटित होना है। बीज कली से गुजरते हुए फूल बन गया तो उसका फूल के रूप में खिलना परमात्म-स्वरूप को प्राप्त करना है। शायद आप सोचें कि मैं पांच पैसे के फूल ला रहा हूं। नहीं! आप डाली से तोड़कर एक परिपूर्ण अस्तित्व, एक परमात्म रूप को ला रहे हैं।

कली के रूप में खिलकर गिरे, तब भी गिरे हुए कहलाओगे और फूल के रूप में खिलकर गिरे तो भी गिरे हुए कहलाओगे, लेकिन दोनों में अन्तर यह होता है कि कली तक आकर गिर गए तो जन्म-जन्मांतर की यात्रा करते रहोगे और खिले हुए फूल के रूप में गिरे तो वह पूर्ण विश्राम में लीन होने की अवस्था होगी। कली के रूप में गिरे तो यही लगेगा कि अभी पहुंच नहीं पाए। मरते वक्त तमन्नाएं शेष रह जाएंगी कि अभी कुछ होना बाकी है। यही तमन्ना पुनर्जन्म का सूत्र बनती है। फूल के रूप में खिल गए तो कोई तमन्ना शेष नहीं रह जाती। एक परम विश्राम, गहरी डुबकी और परम शांति होती है, फूल के रूप में खिलना।

अभी तो कलियों को यह लग रहा है कि हम नहीं पहुंच पा रही हैं। कल एक सज्जन मुझसे वार्तालाप कर रहे थे। वे कह रहे थे 'हम जीवन से न तो अधिक प्रसन्न, न अधिक अप्रसन्न हैं, लेकिन भीतर में कुछ ऐसा जरूर है जिसके चलते हमारे मन में यह अभीप्सा, यह प्यास है कि हमें कुछ और होना है, कुछ और पाना है।' शायद तुम्हें अभी न लगे कि तुम फूल बनने वाले हो। यह अज्ञात की यात्रा होती है जिसमें खबर नहीं लगती। कली अगर सुबह तक फूल बन जाए तब तो कुछ और बात होती है। तब तो तुम्हें बोध हो जाता है। तुम दिन-ब-दिन वृद्ध होते जा रहे हो, पर तुम्हें इसका अहसास नहीं होता कि मैं वृद्ध हो रहा हूँ।

अगर अंकुरण हो आया है, बीज में से पत्तियां निकल आई हैं, कांटे, उग आए हैं और कली भी लग गई है, क्या यह भी कम गौरव की बात है? अब तो पंखुड़ियां भी खिलने लगी हैं। अपने भीतर में उमड़ने वाले अहोभाव को, अंदर की खुमारी को पहचान सको तो पता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चलेगा कि पंखुड़ियां किस तरह खिल रही हैं? जीवन में यह बड़ा अभिशाप होगा अगर खिलती हुई कलियों को आपने बंद कर लिया हो। ये पंखुड़ियां अगर खिल रही हैं तो खिलने दीजिए।

जीवन से आप प्रसन्न रहें या अप्रसन्न, आदमी कली व फूल, दोनों रूपों में गिरेगा। ईमानदार व बेइमान दोनों की मृत्यु निश्चित है। महावीर भी मरे, गोशालक भी मरा। दुर्योधन भी मरा और युधिष्ठिर भी मरा। दुनिया में आकर हमेशा के लिए कोई नहीं रहता। मरते तो सभी हैं, फिर क्या आवश्यकता कि हम ईमानदार बनें?

यह बहुत विचित्र बात है कि तुम करोगे, तब भी मरोगे और नहीं करोगे तब भी मरोगे, तो फिर करना किसलिए? कली की फूल तक की जो यात्रा है, वह इसलिए है कि तुम फूल की तरह खिलकर मरो, कली की तरह बिनखिले होकर रहकर नहीं। तुम ज्ञानी की तरह मरे तो तुम्हारी मौत भी जिंदगी है और अज्ञानी की तरह मरे तो तुम्हारी जिंदगी भी मौत है। खिलकर या पाकर मरे तो कोई तमन्ना शेष नहीं रह जाएगी कि कुछ करना, कुछ पाना, कुछ होना शेष है। तब एक परम तृप्ति होगी। मृत्यु के द्वार पर कोई विरला इन्सान ही होगा, जो परमतृप्ति के साथ मृत्यु को वरण करता है। मृत्यु की वेला को वही व्यक्ति आनंद के साथ स्वीकार कर सकता है, जो अपनी जिंदगी को फूल के रूप में खिला चुका है। अमृत हो चुका है।

जब तक प्रकाश को उपलब्ध नहीं हुए हो तब तक जिंदगी आपाधापी, प्रतियोगिता व प्रतिस्पर्धा की जिंदगी होगी। गलाकाट संघर्ष की जिंदगी होगी। जिंदगी जीने में कोई आनंद नहीं आता, बस जी रहे हैं, जीने का कोई अर्थ नहीं है। कोई साठ वर्ष तक जिए और उससे पूछो कि तुम्हारी साठ वर्ष की जिंदगी का क्या निष्कर्ष रहा? तो वह कहेगा कि यह तो मैंने सोचा ही नहीं। ऐसा अवसर ही नहीं आया कि मैं अपनी जिंदगी के बारे में, परिवार के साथ संबंधों के बारे में गहन विचार करूं।

एक प्रसंग है। एक मुल्ला का विवाह सत्तर वर्ष की आयु में बीस वर्षीय एक युवती के साथ हुआ। वह सोचा करता कि मन्नतों के बाद पहली बीवी नसीब हुई है। बीवी जैसा कहती, मुल्ला वैसा ही करता। वह कहीं मुल्लाजी को छोड़ कर न चल दे, इसलिए हर हुक्म

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उठाता। मुल्ला जब मस्जिद जाने के लिए घर से निकलता तो बीवी कहती कि यहां से सीधा मस्जिद और मस्जिद से सीधा घर आना। मुल्ला कहता 'यही होगा सरकार।'

एक दिन मुल्ला मस्जिद पहुँचा। मौलवीजी की तकरीर हो रही थी। तकरीर के बाद मौलवीजी ने कहा, 'आज जो मेरे साथ जन्नत में चलना चाहें, चल सकते हैं। आज आखिरी दिन है। जो चलना चाहें, वे मेहरबानी करके हाथ खड़े कर दें।' सभी ने अपने हाथ खड़े कर दिए, सिवाय मुल्ला के। मौलवीजी ने पूछा, 'क्या बात है? तुमने अपना हाथ ऊपर नहीं उठाया। क्या तुम्हें जन्नत में नहीं चलना है?' मुल्ला ने कहा, 'बीवी का हुक्म है कि घर से मस्जिद और वहां से सीधा घर आना। बीच में कहीं मत जाना।'

मुल्ला सीधा घर पहुँचा। वह प्यासा था, इसलिए अपनी बीवी से कहा कि जरा एक गिलास पानी देना तो बीवी ने कहा, मैं तो सुबह से काम करते-करते थक गई हूँ, वह जो घड़ा पड़ा है, उससे खुद भी पानी पी लो और मेरे लिए भी लेते आओ। मुल्ला बेचारा क्या करता। अब तो हद ही हो गई थी। बीवी को जो भी काम करवाना होता था, तो वह सुबह-सुबह ही उन कामों की 'लिस्ट' मुल्ला को थमा देती। वह लिस्ट से हटकर एक काम भी नहीं कर सकता, बीवी का आदेश जो ठहरा। एक दिन मुल्ला को लिस्ट थमाकर बीवी कुएँ पर पानी भरने गई। उसका पांव फिसला और वह कुए में जा गिरी। वह चिल्लाई, 'बचाओ! बचाओ!!' 'मुल्ला ने लिस्ट टटोली और कहा,' माफ करना, यह तो लिस्ट में लिखा हुआ ही नहीं है।'

तुम्हारी जिंदगी भी इसी तरह चल रही है। सोचो! क्या तुम्हारी जिंदगी में जीने और मरने के बीच कोई फर्क है? इसीलिए कहता हूं कि कली की तरह मर गए तो उसके कांटों से तो घिरे हुए हो ही मगर पुष्प होकर मरो तो वह परिपूर्णता जब मृत्यु करीब आती है, तो परम विश्राम व परम अहोभाव की लीनता लाती है।

तब तुम इन्सान होकर नहीं, परमात्मा होकर मरते हो।

जो जीवन को पवित्रता के साथ जीता है, उसकी मृत्यु परमात्मा से साक्षात्कार हो जाती है। शेष के लिए, परमात्मा की उपासना भी मृत्यु के द्वार खोल देती हैं। गहराई की बात यह है कि परिपूर्ण होकर जीना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है और परिपूर्ण होकर ही मरना है। जो प्रकाश को उपलब्ध होता है, वही व्यक्ति परिपूर्ण होता है।

जब सब कुछ अवांछित होने लगता है, तब व्यक्ति के मन में तनाव, उत्तेजना और आवेग भर जाता है। मुस्कुराता हुआ चेहरा क्रोध में तब्दील हो जाता है। अंधकार घेर लेता है, और जब अंधकार घेर लेता है तब अवांछित होने लगता है। नतीजा यह होता है कि मनुष्य के भीतर का प्रज्ञा-प्रदीप बुझ जाता है, धर्म की ज्योति भी बुझ जाती है। तब आदमी ऐसा महसूस करता है कि इससे अच्छा हो, मैं मर जाऊं। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में जो नासमझ व्यक्ति होगा वह मृत्यु को चाहेगा और जो समझदार होगा वह इसे एक संयोग मानेगा। वह तो सोचेगा कि इस आवेग अथवा उत्तेजना को कैसे दूर करूं।

प्रतिकूल परिस्थितियां पाकर भी समझदार व्यक्ति अपनी समता तथा संतुलन नहीं खोता। गरीबी में भी, जिस समय आदमी चारों तरफ से अभावों से घिर जाता है, समझदार व्यक्ति यह सोचता है कि ये प्रतिकूल परिस्थितियां हमेशा बनी रहने वाली नहीं है, इसलिए वह अपना संतुलन नहीं खोता, जबकि इन परिस्थितियों में नासमझ व्यक्ति विक्षिप्त-सा हो जाता है।

आपके लिए आयोजित इन ध्यान-शिविरों में प्रयास होता है कि जीवन में मानसिक सन्तुलन उपलब्ध हो जाए। जीवन के मार्ग से गुजरते हुए न जाने कितने उतार-चढ़ाव आते हैं। जिन्दगी में परिस्थितियां सदा एक-सी नहीं रहतीं। ध्यान की सार्थकता इसी में है कि व्यक्ति को मानसिक सन्तुलन मिल जाए। जब व्यक्ति के जीवन में प्रतिकूल परिस्थितियां आती हैं तो वह कितना संतुलन बनाए रखता है? यही व्यक्ति की असली साधना है। परिस्थितियों से प्रभावित न होना ही वीतरागता की कड़ी है।

जो कली यह सोच लेती है कि मुझे कांटों के बीच रहकर भी फूल बनना है वह फूल बन जाएगी, मगर जो कली इन कांटों को स्वीकार नहीं कर सकी, वह फूल नहीं बन पाएगी और सड़ जाएगी। व्यक्ति के पास अकूत धन-संपदा, जमीन-जायदाद, पद-प्रतिष्ठा होते हैं। सभी बाह्य सुख-सुविधाएं उपलब्ध होने के बावजूद नासमझ आदमी अपने आपको और अधिक असन्तुलित कर लेता है। तब उसमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मानसिक भटकाव शुरू हो जाता है और वह दूसरों की उपेक्षा करने लग जाता है। वह अपनी ही अकड़ में जीता है।

पैसे के घमंड के कारण, रूप, सत्ता, संपत्ति, पद, प्रतिष्ठा के कारण वह दूसरों को गौण समझता है और यहां तक कि पूरे समाज को भी उपेक्षित नजरों से देखता है। समाज का उसके लिए कोई अर्थ नहीं रहता। किसी की मृत्यु हो जाने पर, वह उसके उठावने तक में नहीं जाता। वह यह भूल जाता है कि उसे भी मृत्यु के वक्त समाज के कंधों की जरूरत होगी। जब समाज भी अपनी उपेक्षा उसके प्रति प्रकट करता है, जब लोग उसके साथ बैठना पसंद नहीं करते, तब उसके दिमाग में आता है कि मेरे पास सब कुछ होते हुए भी 'कुछ' नहीं है।

धन संपदा पाकर और अनुकूल परिस्थितियों के बावजूद नासमझ व्यक्ति अपने आपको पतित कर लेता है, जबकि समझदार ऐसी परिस्थिति में सोचता है कि ये धन-दौलत कौन-सी सदा के लिए रहने वाली है। फिर मैं किस बात के लिए घमंड करूं? जीवन परिवर्तनशील है। यहां कल क्या हो जाए, पता नहीं चलता। फिर मैं अपनी झूठी शान-ओ-शौकत पर क्यों घमंड करूं?

जो व्यक्ति अनुकूल और प्रतिकूल, दोनों परिस्थितियों में अपना संतुलन बनाए रखता है, उसके जीवन में धर्म-ज्योति जागृत रहती है। उसकी प्रज्ञा का प्रदीप कभी बुझता नहीं है, हरदम उसे एक विवेक-दृष्टि, एक हंस-दृष्टि उपलब्ध रहती है।

सूफी सन्तों की एक बहुत प्यारी कहानी है। एक सम्राट था। उसके मन में इच्छा हुई कि वह दुनिया भर के शास्त्रों का निचोड़ समझे, स्वाध्याय करे, लेकिन सारी दुनिया के शास्त्रों व पुस्तकों को पढ़ने का उसके पास समय नहीं था। उसने अपने दरबार के सभी धर्म-गुरुओं को कहा कि तुम अपने-अपने धर्म-शास्त्रों का सार एक-एक पंक्ति में निकालकर बता दो, पर्याप्त होगा। पंडितों ने अपने-अपने शास्त्रों का अध्ययन किया और निचोड़ निकाला, मगर एक पंक्ति में कोई भी अपने शास्त्रों को नहीं रख पाया। रख भी दिया तो सम्राट को संतुष्टि नहीं हुई।

तब सम्राट को पता चला कि नगर के बाहर एक सूफी सन्त ठहरा है, जो मौन रहता है और किसी-किसी से ही बोलता है। वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनूठा सन्त है। सम्राट एक पंक्ति में अपनी समस्या का हल खोजने सन्त के पास पहुँचा। सम्राट ने अपनी प्रार्थना दोहराई, तो संत ने कहा कि मुझे तो ज्ञात नहीं है। मैं तो कुछ नहीं बता सकता। हाँ, मेरे गुरुजी ने मुझे एक तावीज दिया था, जिसमें सारी दुनिया भर के शास्त्रों का निचोड़ है। चाहो तो तुम ले जा सकते हो, पर शर्त यह है कि इसे तभी खोलना जब अपने आपको पूर्णतया संकटग्रस्त व असहाय पाओ।

कुछ समय उपरांत सम्राट के राज्य पर पड़ौसी राजाओं ने हमला बोल दिया। सम्राट की सेना ने मुकाबला किया, किन्तु वह परास्त हो गई। तब सम्राट अकेले ही घोड़े पर चढ़ा और राज्य के बाहर भागा। रात होने लगी, जिसके कारण अंधेरा भी गहरा रहा था। जंगली रास्तों को पार कर वह पहाड़ी तक पहुँचा, जहां से आगे जाना कठिन था, क्योंकि रास्ते में एक विशाल चट्टान आ गई थी। पीछे से घोड़े के टापों की आवाजें आने लगीं। उसने सोच लिया कि अब मृत्यु निश्चित है। उस परमवेदना की घड़ी में असहाय सम्राट को तावीज की याद आई। उसने तावीज को हाथ से उतारा और उसे खोला। तावीज में से एक कागज निकला। उसने उस कागज को पढ़ा और मुस्कुराया 'दिस टू विल पास' यह भी बीत जाएगा उसने सोचा कि यह कौनसा मंत्र हुआ कि 'यह भी बीत जाएगा।' उसने सुना कि घोड़ों के टापों की जो आवाजें आ रही थी, वे धीरे-धीरे कम पड़ने लगीं। वह तत्क्षण जाग गया। बात उसकी समझ में आ गई कि यह समय भी बीत जाएगा।

सम्राट ने अपने सहयोगियों का सहयोग लिया। बचे हुए सैनिकों में उसने नया जोश भरा और जिन्होंने राज्य पर कब्जा कर लिया था, उनको खदेड़ बाहर किया। उसका पुनः राज्याभिषेक हुआ। चारों तरफ खुशियाँ मनाई जा रही थीं। उसने तावीज खोला और फिर पढ़ा, 'यह भी बीत जाएगा।' यह पढ़ते ही उसके चेहरे पर उदासी छा गई। चारों तरफ खुशियां थीं, जबकि सम्राट का चेहरा मुरझाया हुआ। सभासदों ने सम्राट से उदासी का कारण पूछा कि इस खुशी के माहौल में आपका चेहरा मुरझाया क्यों है?

उसने अपने मंत्रियों से कहा कि तब अनुकूल परिस्थितियां थीं, लेकिन मैं नासमझ बना हुआ था। फिर प्रतिकूल परिस्थितियां आईं, मैंने अपने आपको उपेक्षित समझ लिया था। आज फिर अनुकूल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिस्थितयां आ गई हैं, पर ये हमेशा रहने वाली नहीं हैं। तब उसने बताया कि तावीज में क्या लिखा था? उसके बाद वह हमेशा के लिए राजहमल छोड़कर चला गया।

एक बार मुझे आहारचर्या के लिए जाना पड़ा, तब एक सज्जन ने कहा कि 'इंदौर में हमेशा होने वाले प्रवचनों में जो लोग जाते हैं वे आपके प्रवचन में नहीं आए हैं और जो कहीं नहीं जाते, वे आपका प्रवचन सुनने आए हैं। यह तो आश्चर्य की बात है। मैंने कहा कि कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कल वे अनुकूल थे, आज ये अनुकूल हैं। ये भी तो कल प्रतिकूल हो सकते हैं। जो प्रतिकूल है, वह कल अनुकूल हो जाए, यह तो संयोग है।

अगर कोई आज मुझसे प्रसन्न है तो मैं गर्व नहीं करता और कोई रूठा है तो भी मुझको कोई शिकायत नहीं। किसी के प्रति इसी कारण आसक्ति नहीं हो पाती। आप सबसे मुझे बहुत प्रेम है, पर आसक्ति या राग नहीं है क्योंकि मैं जानता हूं कि अगर यह आज अनुकूल है तो कभी भी प्रतिकूल हो सकता है। जो प्रतिकूल है, उनके प्रति द्वेष इसलिए नहीं है, क्योंकि वे भी कल तक अनुकूल थे। यह तो संयोग है। व्यक्ति को वीत-द्वेष होना चाहिये।

जो होना होता है वह होता है। जब जिस रूप में होना होता है, तब वह उस रूप में होता चला जाता है। तुम्हारी समता इसी बात में है कि जब दोनों परिस्थितियां आती हैं तो तुम कितनी तटस्थता बनाए रख पाते हो। जब चक्की चलती है, तब वही दाना बचा हुआ रहता है, जो कील से चिपका हुआ रह गया है। जो तटस्थ रहा, वही बच गया। हर परिस्थिति में अगर मानसिक सन्तुलन बनाए रखते हो, अगर साक्षी-भाव से जीते हो तो एक औषधि हर समय तुम्हारे साथ है। कैसी भी अच्छी या बुरी स्थितियां बनेंगी, लेकिन तुम्हारे लिए न कोई अच्छी होंगी, न बुरी होंगी। कोई मर रहा है, तो तुम्हारे लिए नहीं मर रहा है। कोई जन्म ले रहा है तो तुम्हारे लिए जन्म नहीं ले रहा है। दुनिया में हजारों समस्याएं हैं, पर तुम्हारे लिए नहीं है। तुम हर स्थिति के मात्र साक्षी भर हो।

एक बात का हमेशा बोध रखिये कि यहां कोई बात शाश्वत नहीं, कोई बात ध्रुव नहीं, कोई नित्य नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सब बीत रहा है, खत्म हो रहा है। सब लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं। जहां तुम बैठे हो, यह मत सोचो कि वहां तुम अकेले बैठे हो। विज्ञान तो यह कहता है कि उस जमीन के टुकड़े पर इससे पहले सत्तर लोग दफनाए जा चुके हैं। सूर्योदय होता है तो सूर्यास्त भी होगा। जहां दुःख है, वहां सुख भी है। जहां संयोग है, वहीं वियोग है। जहां नित्यता है, वहीं अनित्यता है। सब कुछ परिवर्तनशील है, मगर इन्सान को इस बात का बोध नहीं होता।

जीवन का क्षणभंगुरवाद इतने आहिस्ते-आहिस्ते घटित होता है कि तुम्हें अहसास नहीं होता। तुम सोचते हो कि यह जमीन-जायदाद, परिवार और मैं, वैसा का वैसा हूँ। कहाँ बदल रहे हैं ये सब और कहाँ बदल रहा हूँ मैं? अगर ऐसा होता तो महल-महल बने रहते, कोई महल खंडहर नहीं होता, जबकि सारे महल खंडहर होते जा रहे हैं।

जिस दुकान को आज तुम अपना कहते हो कल तक तो वह किसी और की थी। तुम दुकान के प्रति आसक्तिवश कहते हो कि यह दुकान मेरी है। परिवर्तन निरन्तर हो रहा है, क्षण-क्षण परिवर्तन हो रहा है। तुम्हें इस बात का अहसास नहीं होता। दो चीजें हैं या तो परिवर्तन बड़ी तीव्रता के साथ चले या होश बड़ी प्रखरता के साथ आए।

किलारी गांव में लोग बड़ी शांति के साथ सो रहे थे और अगले ही पल भूकंप में सब तहस-नहस। अगर इतना बड़ा परिवर्तन हो और तुम्हारा होश सोया हुआ ही क्यों नहीं हो, तब भी वह जग जाएगा कि कल ऐसा था और आज ऐसा हो गया। पहली बात, संसार का जो धर्म है, उसमें परिवर्तन होता है पर बड़े आहिस्ते-आहिस्ते। जितना आहिस्ता यहां परिवर्तन होता है, हमारे होश की गति उससे भी कम है।

परिवर्तन को तो नहीं रोका जा सकता, पर होश को जरूर गहरा व जीवंत किया जा सकता है। हमारा होश व जागृति जीवंत हो रही है, तो चाहे कितने ही आहिस्ता से परिवर्तन हो, हमसे बच नहीं पाएगा। हम हर क्षण जियेंगे-मरेंगे और जन्म व मृत्यु के बीच का जो क्षण है उसमें शाश्वतता बटोर लेंगे। हमारी पुरजोर कोशिश कली को खिलाकर फूल बनाने की होगी। चाहे फूल का हश्र कुछ भी हो, मगर जीवन में परम विश्राम, शांति व लीनता होगी।

जीवन की सांसें पूर्ण हो गई हैं, इसलिए फूल खिल रहा है, खिर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहा है। जीवन का अंतिम चरण जितनी प्रफुल्लता के साथ होगा, जीवन उतना ही खिला हुआ कहलाएगा। परम विश्राम तक पहुंचने के लिए जीवन के रास्ते से गुजरना पड़ेगा और तब दोनों परिस्थितियां आएंगी - अनुकूल की, प्रतिकूल की, मृत्यु की, अमरत्व की, अंधकार की, प्रकाश की। जीवन तो नट की रस्सी की तरह है, जिस पर हमें अनुकूल व प्रतिकूल के बीच संतुलन बनाए रखकर चलना है। अगर संतुलन न रख पाए तो आत्मा गिर जाएगी, रीढ़ की हड्डी टूट जाएगी। रस्सी पर चलना है तो संतुलन बनाए रखना होगा। जिसका संतुलन टूट गया, वह औंधे मुंह नीचे आ गिरेगा। जागो और बढ़ो हरपल, सतत् अंधकार से प्रकाश की ओर।

अपने पास जो भी है, उसका बोधपूर्वक उपयोग करो। जरूरत से ज्यादा संग्रह मत करो। ज्यादा हो, तो अपरिग्रह-भाव से उसे जरूरतमंदों को बांटने की उदारता बरतो। हिंसा, चोरी, व्यभिचार, मिथ्या भाषण, नशे के सेवन से परहेज रखो। मन को वश में रखो। मन के प्रवाह में बहते रहने की बजाय, ऐसा प्रज्ञा-प्रदीप प्रगट करो, जिससे तुम अपनी विचार-आचार स्थिति के प्रति सजग रह सको।

जो जैसा है, उसे जानो। प्रिय हो या अप्रिय, राग-द्वेष से रहित होकर, उसके प्रति अपने चित्त का सन्तुलन बनाये रखो। प्रवृत्ति या कर्मयोग से स्वयं को विमुख मत करो। यह तो एक प्रकार का पलायन होगा, जीवन से ही बचना और भागना होगा। अपने कर्मयोग को तो और प्रखर करो। चित्त में तटस्थता हो इसलिए कि अपने-पराये का भेद गिर सके। विषयों की अनुपस्थिति का तुम आनंद ले सको। भीतर की शांति का रसास्वाद कर सको।

जीवन से भागो मत। जीवन तो क्या, विषयों से भी दूर मत भागो, दूर भागने से क्या होगा? मन तो उनसे जुड़ा हुआ ही रहेगा। तुम अप्राकृतिक हो जाओगे। बेचारे विषयों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? तुम ही बिगड़े हो। तुम्हारा दृष्टिकोण बिगड़ा हुआ है। विषय तो न तो अच्छे होते हैं, न ही बुरे। वे न मित्र होते हैं, न शत्रु। वे तो जैसे हैं, वैसे हैं। कोरे कागज़ की तरह। हम अपने को उससे संलग्न करके कोरे कागज़ पर कीचड़ उछाल लेते हैं या इन्द्रधनुष उकेर लेते हैं। तुम विषयों से निर्लिप्त हो, निस्पृह हो, तो वे भी निर्लिप्त हैं, निस्पृह हैं। सब

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुछ हमारे नजरिये पर निर्भर करता है। शुद्धता, पवित्रता, साम्यता लयबद्धतता तो चाहिये हमारे तन-मन-वचन में। मन में कुछ हो, वाणी में कुछ और ही आता रहे, और करने के नाम पर कुछ तीसरा ही करते रहे, यह विरोधाभास है, अंधकार है।

वैषम्य से बाहर आओ, दलदल से ऊपर खिलो। फूल को खिल ही जाने दो। जीवन का पटाक्षेप तो होगा। जीवन में मृत्यु आए, जब भी आए, कोई परवाह नहीं, पर हम उन कारणों को मिटा दें, जो जीवन को ही मर्त्य बना डालते हैं। मृत्यु की बजाय, हमारी मृत्यु या हमारा जीना निर्वाण का महोत्सव हो जाये, तो हमारा सौभाग्य! नहीं तो भी पूर्णता को, मुक्ति को, निर्वाण को, परिपूर्ण खिलावट को अपने में जीने का प्रयास तो किया ही जा सकता है।

जो होना होगा, सो होगा; बस हम अपने में होंगे। हमसे कुछ हो जाये, तो अच्छी बात है, न भी होगा, तो भी हम तो अपने में हो ही जाएंगे, अपनी ओर से तो सबको अपने में समाविष्ट कर ही लेंगे। एक होकर, समग्र अस्तित्व होकर जी ही जाएंगे। यही चाहिये। इतना ही काफी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने घर में अपना पुस्तकालय

हमारी बौद्धिक क्षमता बेहिसाब बढ़ी है किन्तु सही मार्गदर्शन एवं विचारदृष्टि के अभाव में मनुष्य की चेतना विखंडित, विपन्न और घुटन के दौर से गुजर रही है। जितयशा फाउंडेशन आम आदमी के आत्मिक विकास एवं मानसिक शांति के लिए प्रयासरत है। फाउंडेशन श्री चन्द्रप्रभ जी जैसे अध्यात्म-पुरुष के दृष्टिकोण और महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर जी के मनोवैज्ञानिक वैचारिक पहलुओं को आधार बनाकर जन-साधारण के लिए साहित्य के प्रकाशन एवं विस्तार की महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

हमारा दृष्टिकोण न केवल लाभ-निरपेक्ष है अपितु लागत से भी कम मूल्य में श्रेष्ठ साहित्य को आप तक पहुंचाना है। हमारे पाठकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है और हमें प्रसन्नता है कि हम भारतीय चिन्तन को ठेठ विदेशों तक पहुँचाने में सफल हुए हैं।

अपना पुस्तकालय अपने घर में बनाने के लिए फाउंडेशन ने एक अभिनव योजना भी बनाई है। इसके अन्तर्गत आपको सिर्फ एक बार ही फाउंडेशन को एक हजार रुपये का अनुदान देना होगा, जिसके बदले में फाउंडेशन अपने यहाँ से प्रकाशित होने वाले प्रत्येक साहित्य को आपके पास आपके घर तक पहुँचाएगा और वह भी आजीवन। इस योजना के तहत एक और विशेष सुविधा आपको दी जा रही है कि इस योजना के सदस्य बनते ही आपको रजिस्टर्ड डाक से फाउंडेशन का अब तक का प्रकाशित सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य निःशुल्क प्राप्त होगा।

यह सूची-पत्र मात्र उपलब्ध पुस्तकों का है। इन पुस्तकों का आप स्वयं तो पठन-मनन करें ही अपने मित्रों को भी उपहार के रुप में दे सकते हैं। इन अनमोल पुस्तकों के प्रचार-प्रसार के लिए आप सस्नेह आमंत्रित हैं।

ध्यान/ अध्यात्म/ चिन्तन

मनुष्य का कायाकल्प : श्री चन्द्रप्रभ
मन और चेतना की विभिन्न गुत्थियों को खोलते हुए ध्यान द्वारा कायाकल्प का एक प्रशस्त मार्गदर्शन।
पृष्ठ २००, मूल्य २५/-

स्वयं से साक्षात्कार : श्री चन्द्रप्रभ
मन-मस्तिष्क की ग्रंथियों को खोलने के लिए ध्यान-शिविर में दिये गये अमृत प्रवचन।
पृष्ठ १४६, मूल्य १०/-

विपश्यना और विशुद्धि : श्री चन्द्रप्रभ
शरीर, विचार और भावों की उपयोगिता और विशुद्धि के मार्ग दरशाता एक अभिनव प्रकाशन।
पृष्ठ ११२, मूल्य १२/-

ज्योति कलश छलके : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
जीवन-मूल्यों को ऊपर उठाने वाली एक प्यारी पुस्तक। भगवान् महावीर के सूत्रों पर विस्तृत विवेचन।
पृष्ठ १६०, मूल्य २०/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान की जीवंत प्रक्रिया : सुश्री विजयलक्ष्मी जैन
ध्यान की सरल प्रक्रिया जानने के लिए एक बेहतरीन पुस्तक। पृष्ठ १२०, मूल्य १०/-
अप्प दीवो भव : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
जीवन, जगत और अध्यात्म के विभिन्न आयामों को उजागर करता चिन्तन-कोष।
पृष्ठ ११२, मूल्य १५/-
चलें, मन के पार : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
सक्रिय एवं तनाव-रहित जीवन प्रशस्त करने वाला एक मनोवैज्ञानिक युगीन ग्रन्थ।
पृष्ठ ३००, मूल्य ३०/-
व्यक्तित्व विकास : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
हमारा व्यक्तित्व ही हमारी पहचान है, तथ्य को उजागर करने वाला एक मनोवैज्ञानिक प्रकाशन।
पृष्ठ ११२, मूल्य १०/-
ध्यानयोग : विधि और वचन : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
ध्यान-शिविर में दिये गये प्रवचनों, विधि-प्रयोगों एवं अनुभवों का अमृत आकलन।
पृष्ठ १८०, मूल्य २०/-
संभावनाओं से साक्षात्कार : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
अस्तित्व की अनंत संभावनाओं से सीधा संवाद। पृष्ठ ६२, मूल्य १०/-
चेतना का विकास : श्री चन्द्रप्रभ
साधकों के लिए महत्वपूर्ण पुस्तक; ध्यान-योग की हर बारीकी का मनोवैज्ञानिक दिग्दर्शन।
पृष्ठ ११२, मूल्य १२/-
आंगन में आकाश : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
तीस प्रवचनों का अनूठा आध्यात्मिक संकलन, जो आम आदमी को प्रबुद्ध करता है और जोड़ता है उसे अस्तित्व की सत्यता से। पृष्ठ २००, मूल्य २०/-
समय की चेतना : श्री चन्द्रप्रभ
श्री चन्द्रप्रभ की नवीनतम पुस्तक; समय की उपादेयता पर एक असाधारण प्रकाशन।
पृष्ठ १४८, मूल्य १५/-
मन में, मन के पार : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
मन की गुत्थियों को समझाने और सुलझाने वाला एक महत्वपूर्ण प्रकाशन, दिशा-दर्शन।
पृष्ठ ४८, मूल्य २/-
प्रेम के वश में है भगवान : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
जिसे पढ़े बिना मनुष्य का प्रेम अधूरा है। पृष्ठ ४८, मूल्य ३/-
जित देखूं तित तू : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
अस्तित्व के प्रत्येक अणु में परमात्म-शक्ति को उपजाने का प्रयत्न। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-
चलें, बन्धन के पार : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
बन्धन-मुक्ति के लिए क्रान्तिकारी सन्देश। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-
वही कहता हूँ : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
दैनिक समाचार-पत्रों में प्रकाशित स्तरीय प्रवचनांशों का संकलन। पृष्ठ ४८, मूल्य ३/-
सत्यम् शिवम् सुन्दरम् : श्री चन्द्रप्रभ
जीवन, जगत और अध्यात्म के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते अमृत शुक्त वचन।
पृष्ठ १६०, मूल्य २०/-
सम्बोधि के दीप : श्री चन्द्रप्रभ
जीवन निर्माण एवं अन्तर्यात्रा के सिलसिले में हर व्यक्ति के लिए उपयोगी पुस्तक।
पृष्ठ १००, मूल्य १०/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिर्गमय : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
भीतर के घुप्प अंधकार को काटता एक प्रकाशवाही संकलन। पृष्ठ १०२, मूल्य १०/-
शिवोऽहम् : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
ध्यान की ऊँचाइयों को आत्मसात् करने के लिए एक तनाव-मुक्त स्वस्थ मार्गदर्शन।
पृष्ठ १००, मूल्य १०/-
पर्युषण-प्रवचन : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
पर्युषण-महापर्व के प्रवचनों को घर-घर पहुँचाने के लिए एक प्यारा प्रकाशन; पढ़ें कल्पसूत्र को अपनी भाषा में। पृष्ठ १२०, मूल्य १०/-
प्रेम और शांति : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
मन की शांति एवं सुख की उपलब्धि के लिए महावीर के सिद्धांतों की नवीनतम प्रस्तुति।
पृष्ठ ३२, मूल्य २/-
महक उठे जीवन-बदरीवन : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
व्यक्तित्व के निर्माण एवं समाज के विकास के लिए बुनियादी बातों का खुलासा। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-
तीर्थ और मन्दिर : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
तीर्थ और मंदिर केवल श्रद्धास्थल हैं या कुछ और भी? जानकारी के लिए पढ़िये यह पुस्तक।
पृष्ठ ३२, मूल्य २/-
अमृत-संदेश : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
सद्गुरु श्री चन्द्रप्रभ के अमृत-संदेशों का सार-संकलन। पृष्ठ ५६, मूल्य ३/-
तुम मुक्त हो, अतिमुक्त : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
आत्म-क्रांति के अमृतसूत्र। पृष्ठ १००, मूल्य ७/-
रोम-रोम रस पीजे : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
जीवन के हर कदम पर मार्ग दरशाते चिन्तन-सूत्रों का दस्तावेज। पृष्ठ ८८, मूल्य १०/-
ध्यान : क्यों और कैसे : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
हमारे सामाजिक जीवन में ध्यान की क्या जरूरत है, इस सम्बंध में स्वच्छ राह दिखाती पुस्तक।
पृष्ठ ८६, मूल्य १०/-
धरती को बनाएं स्वर्ग : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
धर्म की आवश्यकता और नारी-जगत पर लगी बेतुकी पाबंदियों पर समाचार-पत्रों को दिये गये विस्तृत साक्षात्कारों का प्रकाशन। पृष्ठ ५२, मूल्य ३/-
आत्मा की प्यास : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
गुरु-पूर्णिमा पर प्रकाश डालती पुस्तिका। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-
मेडिटेशन एण्ड एनलाइटमेंट : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
ध्यान और समाधि के विभिन्न पहलुओं पर मनन और विश्लेषण; विदेशों में भी बेहद चर्चित।
पृष्ठ १०८, मूल्य १५/-

आगम/ शोध/ कोश

आयार-सुत्तं : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
एक आदर्श धर्म-ग्रन्थ का मूल एवं हिन्दी अनुवाद के साथ अभिनव प्रकाशन। विज्ञान एवं चिन्तन के क्षेत्र में एक खोज। पृष्ठ २६०, मूल्य ३०/-
चन्द्रप्रभ : जीवन और साहित्य : डॉ. नागेन्द्र
महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर जी की साहित्यिक सेवाओं का विस्तृत लेखा-जोखा।
पृष्ठ १६०, मूल्य १५/-
जय सम्मेतशिखर : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
जैन तीर्थ सम्मेतशिखर जी के इतिहास एवं विकास पर ब्यौरा। पृष्ठ ३२, मूल्य ५/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय देवचन्द्र : जीवन, साहित्य और विचार : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
श्रीमद् देवचन्द्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने वाला शोध-प्रबन्ध।
पृष्ठ ३२०, मूल्य ५०/-

हिन्दी सूक्ति-सन्दर्भ कोश : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
हिन्दी के सुविस्तृत साहित्य से सूक्तियों का ससन्दर्भ संकलन, दो भागों में।
पृष्ठ ७५०, मूल्य १००/-

पंच संदेश : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर कालजयी सूक्तियों का अनूठा सम्पादन।
पृष्ठ ३२, मूल्य २/-

बिना नयन की बात : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
अध्यात्म-पुरुष श्रीमद् राजचन्द्र के प्रमुख पदों पर मानक प्रवचन। पृष्ठ १००, मूल्य १०/-

भगवत्ता फैली सब ओर : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
कुन्दकुन्द की गाथाओं पर मार्मिक उद्भावना। कम शब्दों में अधिकतम सामग्री।
पृष्ठ १००, मूल्य १०/-

सहज मिले अविनाशी : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
पंतजलि के प्रमुख योग-सूत्रों की लोकसुलभ विवेचना पृष्ठ ६२, मूल्य १०/-

अंतर के पट खोल : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
पंतजलि के महत्वपूर्ण सूत्रों पर पुनर्प्रकाश; योग की अनुठी पुस्तक। पृष्ठ ११२, मूल्य ७/-

हंसा तो मोती चुगै : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
महावीर के अध्यात्म-सूत्रों पर प्रवचन। पृष्ठ ८८, मूल्य १०/-

कथा-कहानी

संसार में समाधि : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
संसार में समाधि के फूल कैसे खिल सकते हैं, सच्चे घटनाक्रमों के द्वारा उसी का सहज विन्यास।
पृष्ठ १२०, मूल्य १०/-

सिलसिला : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
पशोपेश में पड़े इंसान के विकल्प को तलाशती दास्तान। बालमन, युवापीढ़ी, प्रौढ़, बुजुर्गों के अन्तर्मन को समान रूप से छूने वाली कहानियों का संकलन। पृष्ठ १२०, मूल्य १०/-

संत हरिकेशबल : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
अस्पृश्यता-निवारण के लिए बोलती एक रंगीन कहानी। बच्चों के लिए सौ फीसदी उपयोगी।
पृष्ठ ३२, मूल्य ५/-

शून्य का संदेश : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
रहस्य की परतों को उघाड़ती लघुकथाएं। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-

ताल बना सागर : श्रीमती कुसुम आंचलिया
गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी के प्रेरणास्पद जीवन का एक रंगीन और बेबाक आकलन।
पृष्ठ २४, मूल्य ५/-

सत्य, सौन्दर्य और हम : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
सुन्दर, सरस प्रसंग, जिनमें सच्चाई भी है और युग की पहचान भी। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-

घट-घट दीप जले : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
राष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित श्री चन्द्रप्रभ की कहानियों का संकलन। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-

कुछ कलियाँ, कुछ फूल : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
संसार के विभिन्न कोनों में हुए सद्गुरुओं की जीवन्त घटनाओं का आलेखन। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवन के झंझावात : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
प्रसिद्ध कहानीकारों की तीस श्रेष्ठतम लघुकथाओं का संग्रह। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-
ज्योति के अमृत कलश : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
अध्यात्म के अतीत का जीवंत चित्रण। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-

काव्य-कविता

छायातप : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
अदृश्य प्रियतम की रंगीन बारीकियों का मनोज्ञ चित्रण। रहस्यमयी छायावादी कविताएं।
पृष्ठ १०८, मूल्य १०/-
जिन-शासन : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
काव्य-शैली में जैनत्व को समग्रता से प्रस्तुत करने वाला एक-मात्र सम्पूर्ण प्रयास। पृष्ठ ८०, मूल्य ३/-
अधर में लटका अध्यात्म : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
दिल की गहराइयों को छू जाने वाली एक विशिष्ट काव्यकृति। पृष्ठ १५२, मूल्य ७/-

गीत-भजन-स्तोत्र

दर्शन दो भगवान : विकास नाहर
सुपरहिट लोकप्रिय भजनों का अप्रतिम संकलन। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-
महान् जैन स्तोत्र : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
अत्यन्त प्रभावशाली एवं चमत्कारी जैन स्तोत्रों का विशाल संग्रह। पृष्ठ १२०, मूल्य १०/-
दादा गुरुदेव के भजन : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
दादा गुरुदेब के भजनों और गीतों का संग्रह। प्रभात-वन्दना एवं भजन-संध्या में नित्य उपयोगी।
पृष्ठ ३२, मूल्य २/-
जैन भजन : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
लोकप्रिय तर्जों पर निर्मित भावपूर्ण गीत-भजन। पृष्ठ ४८, मूल्य २/-
महक तुम्हारी, ज्योति हमारी : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
इक्कीस सन्त-कवियों के श्रेष्ठतम पदों का संग्रह। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-

रजिस्ट्री चार्ज एक पुस्तक पर 8/- रुपये, न्यूनतम सौ रुपये का साहित्य मंगाने पर डाक-व्यय से मुक्त। धनराशि श्री जितयशाश्री फाउंडेशन (SRI JIT-YASHA SHREE FOUNDATION) कलकत्ता के नाम पर बैंक-ड्राफ्ट या मनिआर्डर द्वारा भेजें। वी.पी.पी. से साहित्य भेजना शक्य नहीं होगा। आज ही लिखें और अपना ऑर्डर निम्न पते पर भेजें।

श्री जितयशा फाउंडेशन
9 सी-एस्प्लानेड रो ईस्ट (रूम नं. 28)
धर्मतल्ला मार्केट,
कलकत्ता-700 069 **दूरभाष** : 220-8725

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य चाहे तो महावीर का पुनर्जन्म हो सकता है। महावीर और बुद्ध तो संसार से मुक्त हो गये, पर हम अगर महावीरत्व का आचमन करें, तो धरती पर महावीर और बुद्ध की पुनरावृत्ति हो सकती है। हर मानव महावीर हो, महावीर के देशना की यही आत्मा है।

श्री चन्द्रप्रभ

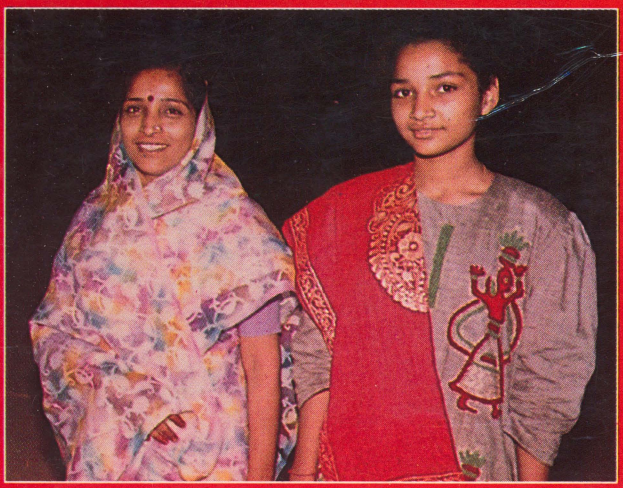

श्रीमती जयश्री दफ्तरी कु० टीना दफ्तरी

(प्रथम पुण्य तिथि, ७ अक्टुबर, ९५)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org